प्रसाद सीरीज १३

विचार धारा

श्री सुरेन्द्र शर्मा

प्रकाशक

श्री रामप्रसाद एण्ड सन्स

आगरा व इलाहाबाद

१६४५

मूल्य ।।≈)

विचार-धारा

श्री कुँ० भवनपालसिंह बी० ए० (ऑक्सन)

श्री कुँ० भवनपालसिंह बी० ए० (ऑक्सन)
कोटला (आगरा)

श्रीमन्,

आप विचारशील, और सहृदय साहित्यानुरागी हैं। बचपन ही से आप मेरे निकटतम साथी, सुहृद और परम हितैषी रहे हैं। आपका सहज स्नेह, और साहित्य-क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए जो प्रोत्साहन मुझे प्राप्त हुआ है उसके लिए सम्मान और कृतज्ञता का भाव प्रकट करने के लिए अपने अध्ययन और विचारों के पत्र-पुष्प की यह भेंट लेकर आज आपके सम्मुख उपस्थित हूँ। कृपया इसे स्वीकार कीजिए।

शारदा-सदन
प्रयाग
१८ सितम्बर, १९४५

—सुरेन्द्र शर्म्मा

अपनी बात

विगत २०–२५ वर्षों में जो कुछ मैंने लिखा है उसका एक अंश 'विचार-चित्र' में प्रकाशित हुआ है। कुछ लेख इस पुस्तक में दिये जा रहे हैं। जिन पत्र-पत्रिकाओं में ये लेख प्रकाशित हो चुके हैं उनका व्यौरा 'निबन्ध-निर्देश' में दिया गया है। मैं हिन्दी के उन सभी पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों और प्रकाशकों का हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपने पत्रों में इन लेखों को स्थान देकर मेरा उत्साह बढ़ाया।

जो लेखक या साहित्यकार केवल अपने अन्तः करण की प्ररणा से, अपने आनन्द के लिए वह लिखते हैं जो कुछ वे अपने हृदय में अनुभव करते हैं—और तब लिखते हैं जब उनके पास वास्तव में कुछ होता है और उनसे कहे या लिखे बिना रहा नहीं जाता, वे वास्तव में धन्य हैं और वन्दनीय हैं! ऐसे साहित्य-मनीषी विधाता की सृष्टि में सचमुच अभिनव वरदान के रूप में होते हैं। उनके शब्द में, उनकी वाणी में, उनके जीवन की प्रत्येक गति-विधि में, वह अपूर्व क्षमता होती है जिसके सहज स्पर्श से मानव का हृदय, अरे नहीं, रोम-रोम नवस्फूर्ति और नव्य चेतना से स्पंदित हो उठता है। क्यों? इसलिए कि उनके जीवन में एक साधना होती है—ऐसी साधना जिससे उनके जीवन का क्षण-क्षण साहित्य और कला की आराधना में लय हो जाता है। तब वे जो कुछ लिखते हैं, अथवा गाते हैं उसमे वास्तव में साहित्य और कला का अपूर्व सौन्दर्य होता है, दुर्लभ रस होता है जिसका आस्वादन कर, पीयूष पान कर,

मानव-हृदय आनन्द में विभोर हो उठता है। वास्तव में साहित्य और कला का तत्त्व अमृत के सदृश है जिसकी बूँद-बूँद में मृतक हृदयों को हरा-भरा करके उन्हें सजीव और दिव्य बना देने की अपूर्व शक्ति होती है। साहित्य और कला के अमृत का यह दुर्लभ तत्त्व व्यास, बाल्मीकि, तुलसी, सूर के सदृश उन अमर पुजारियों ही को प्राप्त होता है जिनका रोम-रोम उनकी आराधना में रम जाता है।

किन्तु आज के भौतिकवादी विषाक्त वातावरण में, मुख्यकर इस पराधीन देश के वायुमण्डल में, जहाँ अगणित आधि-व्याधियों से ग्रस्त मानवता पड़ी कराह रही है, साहित्य और कला के मन्दिर में अलख जगानेवाले सच्चे पुजारी, जिन्होंने किसी ऊँचे और पवित्र आदर्श की वेदी पर आत्मोत्सर्ग कर दिया हो, क्या कहीं ढूँढ़े भी मिलेंगे? यदि नहीं, तो, सरस्वती के मन्दिर का द्वार खोल कर साहित्य, और कला के वास्तविक सौन्दर्य का दर्शन कौन करावे?

इन पंक्तियों का लेखक अपने आपको साहित्य और कला का मर्मज्ञ नहीं समझता, और न, उसका यही दावा है कि वह उन प्रकृत साहित्यकारों और लेखकों की चरण-रज स्पर्श करने की भी क्षमता रखता है जिनकी अमर कृतियों में युग पलट देने की शक्ति होती है—जिनके भ्रू-विलास से बड़े से बड़े साम्राज्य बन और बिगड़ जाते हैं! वह तो साहित्य का केवल एक अत्यन्त विनम्र विद्यार्थी है। इस दशा में उसने हिन्दी में जो कुछ लिखा है वह उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार महज़ सफेद काग़ज़ को काला करने का प्रयत्न मात्र है! स्याह को सफ़ेद करने का प्रयत्न नहीं!

इन लेखों में कुछ तो विचारात्मक हैं और कुछ वर्णनात्मक। कुछ लेख लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा की दृष्टि से लिखे गये हैं। अतः ये सभी लेख

विभिन्न रुचि के अनुसार साहित्य के विद्यार्थियों, नवयुवक और नवयुवतियों दोनों ही के लिए उपयोगी हो सकते हैं। ये लेख काल और परिस्थिति विशेष में लिखे गये हैं। उसी काल और परिस्थिति के अनुसार इनकी उपयोगिता भी समझी जा सकती है। किन्तु काल और परिस्थिति बदल जाने पर आज भी साहित्यिक और ऐतिहासिक दृष्टि से इन लेखों की उपयोगिता है। हमारी इस बात में कितना तथ्य है, यह, पाठक स्वयं इस 'विचार-धारा' में डूब कर देख लें।

—सुरेन्द्र शर्मा

निबन्ध-निर्देश

१—'बंगाल का शेर' आचार्य श्याम सुन्दर गोस्वामी—(साप्ताहिक 'विश्व-मित्र' १७ मार्च, १९३६ ई०)

२—भारतीय महिलाओं से दो-दो बातें—(साप्ताहिक 'विश्वमित्र' २१ जनवरी, १९३६ ई०)

३—'ब्लैंक चेक'—(साप्ताहिक 'विश्व-मित्र' २८ जनवरी, १९३६ ई०)

४—अधिकार या कर्त्तव्य—('माधुरी', पौष, ३११ तु० सं० वर्ष १३, खण्ड १, संख्या ६)

५—गया-गाथा—('प्रभा', १ जनवरी, १९२३ ई०)

६—बेलगाँव-दर्शन—('प्रभा', १ जनवरी, १९२५ ई०)

७—बड़ौदा के पुस्तकालय—('चाँद', अगस्त, १९३४ ई०)

८—लड़कियों की शिक्षा का प्रश्न—('चाँद', नवम्बर, १९३४ ई०)

९—बौद्ध धर्म में स्त्रियाँ—('चाँद', जून, १९३४ ई०)

१०—भारतीय स्त्रियों की वीरता—(चाँद, जुलाई, १९३३ ई०)

विषय-सूची

विचार धारा

१—आचार्य श्याम सुन्दर गोस्वामी

प्रोफेसर श्यामसुन्दर गोस्वामी एक प्रसिद्ध बङ्गाली व्यायाम-विशारद हैं। आप विविध प्रकार की हठयोग की क्रियाओं और शारीरिक व्यायाम-सम्बन्धी बातों के विशेषज्ञ और उनके प्रचारक हैं। बहुत ही थोड़े समय में आपने इस क्षेत्र में बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली है। अनेक अवसरों पर भारत के कितने ही बड़े बड़े नरेशों ने आपकी सेवाओं से लाभ उठाया है। आप नैपाल, पीथापुरम्, रामनद आदि राज्यों के राजा महाराजाओं तथा हैदराबाद के नवाब साहब के यहाँ व्यायाम के डाइरेक्टर भी रह चुके हैं। गोस्वामी इन्स्टीट्यूट के आप सभापति हैं। यह संस्था समाज में शारीरिक व्यायामपद्धति तथा यौगिक क्रियाओं का प्रचार करती है। शारीरिक व्यायाम तथा यौगिक क्रियाओं के सम्बन्ध में आपने जो अनुशीलन किये हैं उनकी उपयोगिता अमेरिका की प्राकृतिक विज्ञान की एक प्रसिद्ध संस्था ने भी स्वीकार की है। उस संस्था के आप आजीवन सदस्य निर्वाचित हुए हैं। आपकी व्यायाम-पद्धति की विशेषता यह है कि आपने भारतीय योग पद्धति तथा आज तक की पाश्चात्य शारीरिक व्यायाम पद्धति का वैज्ञानिक ढङ्ग से समन्वय कर दिया है। आप की व्यायाम पद्धति इसी समन्वय का परिणाम है। आपकी व्यायम-पद्धति का भारत के कितने ही नरेशों, सरदारों और उच्च अधिकारियों ने अनुसरण किया है। पूर्वी और पश्चिमी चिकत्सा-शास्त्र के विशेषज्ञों ने आपकी

व्यायाम-पद्धति की यथोचित परीक्षा करके इसे बहुत ही उपयोगी और वैज्ञानिक बताया है। लेफ्टिनेंट कर्नल जे० मेकफर्सन ने कहा है—"डाक्टरों तथा शारीरिक व्यायाम से दिलचस्पी रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिये श्री गोस्वामी की पद्धति अवश्य उपयोगी सिद्ध होगी।" हर्ष की बात है कि श्री गोस्वामी अपने सुयोग्य शिष्य दीनबन्धु प्रामाणिक के साथ यूरोप और अमेरिका की यात्रा करने वाले। वे वहाँ भाषण देंगे और यौगिक क्रियाओं के प्रदर्शन से यह सिद्ध करेंगे कि यौगिक प्रणाली आज तक की पश्चिमी व्यायाम-पद्धति के साथ कहाँ तक, इस प्रकार मिलायी जा सकती है जिससे शरीर और दिमाग दोनों ही पर बार बार अपना असर डाल सके। श्री गोस्वामी पश्चिम की व्यायाम-संस्थाओं में कुछ अनुशीलन का कार्य भी करेंगे। उन्होंने पुट्ठों के नियन्त्रण का जो नया तरीका निकाला है उसकी ओर बहुत से चिकित्सा-विशेषज्ञों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। हैदराबाद के मेडिकल कालेज के प्रिंसपल मेजर फरहत अली ने कहा है—"यह नियन्त्रण केवल पुट्ठों के कङ्काल तक ही परिमित नहीं है, बल्कि इससे भी अधिक आश्चर्य-जनक प्रदर्शन है समूचे पुट्ठों का—इससे पता चलता है कि मानव शरीर के पुट्ठे एक नियम-बद्ध-व्यायाम-पद्धति और इच्छा-शक्ति से कहाँ तक काम करने के लिये तैयार किये जा सकते हैं। पुट्ठों के नियन्त्रण और उनके बढ़ाने का यह ढंग शल्य-चिकित्सा के विद्यार्थियों के अध्यन करने की चीज़ है।"

श्री गोस्वामी के अद्भुत कार्यों से प्रसन्न होकर पीथापुरम् के महाराज ने उनको 'बङ्गाल का सिंह' की उपाधि से विभूषित किया है। वे सचमुच बड़े प्रतिभाशाली और साहसी व्यक्ति हैं। अपने विचित्र कार्यों के प्रदर्शन से उन्हें नैपाल, काश्मीर आदि राज्यों के कितने ही बड़े बड़े राजा-महाराजाओं से हीरक और स्वर्ण पदक मिल चुके हैं।

अत्यन्त उपयुक्त और लाभदायक व्यायाम-पद्धति के विकास के लिये उन्होंने अपने ढङ्ग पर बिलकुल नये सिरे से तीन तरीक़े निकाले हैं—

१—बिना किसी दूसरी चीज़ को सहायता के पुट्ठों के विकास और विस्तार की पद्धति।

२—बिना किसी बाहरी चीज की सहायता के पेट की भोजन की नली को धोने का तरीका।

३—वीर्य-निग्रह का वैज्ञानिक तरीका।

इसके अतिरिक्त श्री गोस्वामी मूत्रेन्द्रिय के द्वारा दूध को खींच लेते हैं, और फिर बाहर निकाल देते हैं। उनकी हठयोग की क्रियाओं को देख कर दर्शक सचमुच दङ्ग रह जाते हैं।

उनके सयोग्य शिष्य श्री दीनबन्धु प्रामाणिक भी बड़े बड़े राजा-महाराजाओं और उच्च अधिकारियों के सामने शारीरिक व्यायामों का प्रदर्शन कर चुके हैं। पुट्ठों के भीतरी और बाहरी नियन्त्रण का उन्हें भी सचमुच कमाल हासिल है पुरस्कार-स्वरूप उन्हें बहुत से स्वर्णपदक और सर्टीफिकेट भी दिये गये हैं।

गुरु और शिष्य, दोनों ही के व्यायाम सम्बन्धी काम अद्भुत और उत्कृष्ट हैं। जो लोग उनके संसर्ग में आते हैं और व्यायाम-पद्धति का अनुसरण करते हैं वे अधिक से अधिक लाभ उठाने में समर्थ होते हैं। असल बात यह है कि वे पूर्णतया विकसित हुए मनुष्यत्व के उत्कृष्ट और उज्ज्वल आदर्श हैं।

वास्तव में गोस्वामी व्यायाम-कौशल के आचार्य हैं उन्होंने कितने ही छात्र और छात्राओं को व्यायाम-कला सिखलाई है। उनकी सुयोग्य शिष्या कुमारी नीलिमा चटर्जी ने तो अपने अद्भुत-व्यायाम प्रदर्शन में बड़ा यश कमाया है।

हठयोग की प्राचीन क्रियाओं तथा पाश्चात्य देशों की आधुनिक व्यायाम पद्धति का तुलनात्मक दृष्टि से गहन अध्ययन और अनुशीलन करके, दोनों के समन्वय से, वर्तमान समय के लिये सर्वथा उपयुक्त व्यायाम-प्रणाली ढूंढ़

निकालने में प्रोफेसर गोस्वामी को अपने उद्योग में यथेष्ट सफलता मिली है। ऐसी उपयोगी तथा नये ढङ्ग की व्यायाम-प्रणाली चला कर उन्होंने बंगाल ही का नहीं, किन्तु समूचे देश का मस्तक गौरव से ऊंचा कर दिया है।

२—भारतीय महिलाओं से दो-दो बातें

५-६ वर्ष पहले की बात है; एक शिक्षिता बहन मेरे घर आयीं; थोड़ी देर तक हम लोगों में साधारण शिष्टाचार की बातें होती रहीं, फिर देश की वर्तमान सामाजिक अवस्था की चर्चा छिड़ गयी। वह बहन साधारणतः शिक्षिता, आधुनिक शिक्षा-दीक्षा की कट्टर पक्षपातिनी और पूर्णतः स्वतन्त्र विचार की हैं। संयोग से उनकी दृष्टि मेरी टेबिल पर पड़ी हुई एक पुस्तक पर पड़ गयी। उन्होंने तुरन्त ही मेज पर से उक्त पुस्तक उठा ली और इधर-उधर से उसके पन्ने उलटने लगीं। वह पुस्तक मेरे एक मित्र की लिखी हुई थी। उसमें भारतीय नारी-जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक आवश्यक बातों पर प्रकाश डाला गया था और साथ ही स्त्रियों के लिए कुछ सीधा-सादा उपदेश भी था।

इधर-उधर से कुछ पन्ने उलटने के बाद उक्त देवीजी की मुख-मुद्रा बहुत गम्भीर हो गयी और माथे पर कुछ शिकन भी पड़ गयी। वे पुस्तक मेज पर रखते हुए तुरन्त ही बोल उठीं—

"पुरुषों को चाहिए कि वे नारियों की चिन्ता छोड़कर पुरुष-जीवन पर पुस्तकें लिखें; स्त्रियों के जीवन की चर्चा स्त्रियों ही के लिए छोड़ दें।"

इतने ही में मेरी पत्नी ने कहा—"बहनजी, आप ठीक कहती हैं। इन पुरुषों को जाने, हो क्या गया है। देखिये न, तुलसीदास ने स्त्रियों को कैसा बुरा-भला कहा है?" बस, इस बात ने उक्त देवीजी के लिए, सचमुच आग में घी डालने का काम किया। वे कुछ रोष-भरे स्वर में बोलीं—

"अगर आज, इस जमाने में, तुलसीदास बाबा होते तो मैं उन्हें पकड़कर बैठ जाती और पूछती कि बताओ, तुमने स्त्रियों को पानी पी-पीकर क्यों कोसा है ? रामायण में, स्त्रियों के सम्बन्ध में ऊल-जलूल बातें क्यों लिख मारी हैं ?"

मैंने कहा—बहिनजी, आप तुलसीदास बाबा पर बिगड़ने के पहले उस समय की देश की परिस्थिति और उसकी सामाजिक अवस्था पर विचार कीजिये, और फिर उस समूची अवस्था के कारणों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी कर डालिये; जब आप इतना कर लेंगी तभी आप रामायण के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास को ठीक-ठीक समझ सकेंगी और उनके साथ न्याय भी कर सकेंगी। वे बड़े तपाक से बोल उठीं—तुलसीकृत रामायण क्या ऐतिहासिक ग्रन्थ है, जिसके लिए इतने बखेड़े पाले जायँ !

मैंने धीरे से कहा—नहीं, तुलसीकृत रामायण ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं, सर्वथा काव्य-ग्रन्थ है, किन्तु उस काव्य-ग्रन्थ और उसके रचयिता का यथार्थ रूप में दर्शन करने के लिए भी, अन्य दृष्टियों के साथ-साथ, तत्कालीन भारतीय परिस्थिति की परम्परागत विचार-धारा की एक अत्यन्त आवश्यक ऐतिहासिक दृष्टि भी चाहिए। बस, उस समय यहीं पर हमारी बातचीत समाप्त हो गयी।

इसके अतिरिक्त अन्य कितनी ही पढ़ी-लिखी देवियों के विचारों से अवगत होने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनमें हमें प्रायः एकाङ्गी विचार-धारा ही देखने को मिली है। उस विचार-धारा का आधार है केवल दूसरों की नक़ल, गम्भीर विचार या पढ़ी-सुनी बातों का तथ्यपूर्ण विश्लेषण नहीं। इसी कारण हम इन पंक्तियों में उनकी चर्चा करने बैठे हैं। पश्चिम की वर्तमान शिक्षा और सभ्यता में जो गुण हैं, उन्हें अपनाने के हम क़ायल हैं। किन्तु उन ग्रहणीय गुणों को अपना कर भी हम अपने उन भारतीय आदर्शों से नीचे क्यों गिर पड़ें, जो मानवीय-जीवन को ऊँचा, समुन्नत और स्वस्थ बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं ?

उदाहरण के लिए भारतीय घरेलू जीवन का आदर्श है कर्त्तव्य-परायणता, सेवा, त्याग, सद्भावना और प्रेम। भारतीय पारिवारिक जीवन में ये सब गुण,

केवल आदर्श की, धर्म-ग्रन्थों में बन्द रखे रहने की ही चीज नहीं हैं। आज भी, इन गिरे दिनों में भी, इस देश के झोपड़ों से लेकर राजप्रासादों तक में हजारों परिवार आपको ऐसे मिलेंगे जहाँ कर्त्तव्यशील भाई, माता-पिता, पुत्र, पति-पत्नी के रूप में इन गुणों की सजीव प्रतिमाएँ देखी जा सकती हैं। जिस दिन भारतीय घरेलू जीवन से उपर्युक्त गुण किनारा कर जायँगे उस दिन हमारे घर श्मशान से भी गये-बीते बन जायँगे।

यदि पश्चिम के घरेलू जीवन पर विचार करने बैठें तो वहाँ हमें दाम्पत्य जीवन में कर्त्तव्य की नहीं, किन्तु अधिकार की प्रधानता मिलती है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वहाँ स्त्रियाँ कर्त्तव्य की अवहेलना करके, आँखें बन्द कर अधिकार के लिए दौड़ती नजर आ रही हैं। फलस्वरूप तलाक के मारे स्त्रियाँ और पुरुष दोनों ही परेशान हैं। घरेलू जीवन में अत्यधिक अधिकारवाद की भावना का परिणाम यह हुआ है कि पश्चिमी समाज में घरेलू जीवन का वह आनन्द ही नहीं रहा, जो उन्नत और सुखी मानव-जीवन का सबसे उत्कृष्ट सौंदर्य समझा जाता है। जहाँ दाम्पत्य जीवन में कर्त्तव्य को ठुकरा कर सब जगह अधिकार ही की सत्ता है वहाँ सुख और शान्ति कैसी ?

आर्य जाति ने परम्परा से परिवार में कर्त्तव्य की भावना को महत्व देकर उस उत्कृष्ट और आदर्श जीवन की व्यावहारिक कल्पना की है जिसके उदाहरण संसार के इतिहास में ढूँढ़े नहीं मिलते।

हम चाहते हैं कि हमारी पढ़ी-लिखी देवियाँ पूर्व और पश्चिम के दोनों ही घरेलू जीवनों को उनके यथार्थ रूप में देखें और बड़ी गम्भीरता से उन पर विचार करें। पश्चिमी शिक्षा और सभ्यता के वास्तविक गुणों को अपना कर भी वे उसके कुप्रभाव से बचने का पूरा प्रयत्न करें।

इन सब बातों के कहने का अर्थ यह कदापि नहीं कि हम भारतीय देवियों की उन्नति के, या उन्हें धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में किसी प्रकार भी पुरुषों के समानाधिकार देने के विरोधी हैं। हम तो चाहते हैं कि भारतीय देवियाँ पढ़-लिखकर अधिक से अधिक योग्यता प्राप्त करें और जीवन

की प्रत्येक दिशा को उन्नत बनाकर सच्चे अर्थों में ज्ञानी बनें; उनकी उन्नति के मार्ग में तनिक भी रुकावट न डाली जाय। किन्तु अधिक से अधिक ज्ञानार्जन करके भी उनके चरित्र, मन और मस्तिष्क तथा जीवन के आदर्श भारतीयता के रंग में रंगे हों। स्त्रियोचित शील और विवेक को वे हाथ से न जाने दें, यह हमारी आकांक्षा जरूर है।

हमारी देवियों में शिक्षा और ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति बढ़ रही है। कितने ही प्रान्तों में देवियों ने पढ़-लिखकर देश और समाज की सेवा करके बड़ा नाम पाया है; यह देश के लिए शुभ चिन्ह है। परन्तु इसके साथ ही समाज में यह चर्चा भी चल रही है कि पढ़-लिखकर स्त्रियाँ घर-गृहस्थी के काम की नहीं रहतीं और घरेलू काम-धन्धे को वे एक आफत समझने लगती हैं। उनमें फैशन-परस्ती बेहद बढ़ती जाती है, और स्वतन्त्रता के नाम पर उनके जीवन में स्वच्छन्दता तथा उच्छृङ्खलता घर कर लेती है, फलस्वरूप वे अपने आप उस सर्वनाश की ओर बढ़ती जाती हैं जहाँ पहुँच कर भारतीय संस्कृति की दृष्टि से वे सचमुच गृहिणी बनने के काबिल नहीं रह जातीं। एक प्रसिद्ध यूनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर ने, जिन्हें कालेज की आधुनिक उच्च शिक्षा प्राप्त लड़कियों के जीवन को पास से देखने का अवसर मिला था, एक बार कहा था कि, आधुनिक ऊँची शिक्षा प्राप्त करके हमारी लड़कियाँ वकील-बैरिस्टर बन सकती हैं, कौंसिलों की मेम्बर भी बन सकती हैं, किन्तु भारतीय घरों की यथोचित-व्यवस्था करनेवाली सुयोग्य गृहिणी नहीं बन सकतीं। क्यों?

इस प्रश्न के उत्तर के लिए किसी बड़े भारी तत्वज्ञान का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं है। कोई भी समझदार स्त्री-पुरुष, जो देश की वर्तमान परिस्थिति तथा उसकी आवश्यकताओं से परिचित है, आधुनिक शिक्षा के कुप्रभाव को अपनी आँखों से देखकर इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है।

आधुनिक रूस के निर्माता लेनिन से एक बार किसी ने पूछा कि आधुनिक युग की स्त्री में कितनी योग्यता होनी चाहिए? तुरन्त ही उसके मुँह से निकल पड़ा—"इतनी योग्यता, जिससे वह अपने घर का चूल्हा-चौका सुचारु-रूप से

संभाल सके, और साथ ही आवश्यकता पड़ने पर अपने देश के शासन-सूत्र का सञ्चालन भी कर सके।"

लेनिन की इस बात में व्यावहारिकता है, और है ऐसा तथ्य जो वर्त्तमान दुनिया के संघर्ष-पूर्ण अनुभवों पर आधारित है। हमारी पढ़ी-लिखी देवियाँ इस प्रकार के अनुभवों से लाभ उठा सकती हैं।

आज-कल के जीवन में, मुख्यतया पराधीन भारतीय जीवन में, संघर्ष बहुत बढ़ गया है। स्त्री-पुरुष, दोनों ही के जीवन में, कण्टकाकीर्ण मार्ग में पद-पद पर कठिनाइयाँ आती हैं, ऐसी कठिनाइयाँ,—जिन्हें दूर करने में कभी-कभी किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाना पड़ता है। इस दशा में स्त्री और पुरुष, दोनों ही मिलकर, एक मन और एक प्राण हो, अपना कर्त्तव्य-पालन करने में जुटें, तभी वे जीवन-सङ्ग्राम की कठिनाइयों को दूर कर सफलता से उसमें अग्रसर हो सकेंगे और यदि, आधुनिक शिक्षा के नाशक प्रभाव से दोनों में अधिकारवाद का झगड़ा आरम्भ हो गया जिसकी बहुत सम्भावना है, तो फिर दोनों ही का ढेर हो जायगा। दोनों ही की शक्तियाँ क्षीण हो जायँगी और उनके घरों का सर्वनाश हो जायगा। घरों का सर्वनाश होने पर घरेलू जीवन कैसा ? और हमारे घरेलू जीवन का अन्त, समष्टि रूप से हमारे देश और समूचे समाज के लिए कितना भयावह होगा उसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती।

शिक्षित और अशिक्षित, दोनों ही प्रकार के लोगों को यह शिकायत है कि जो शिक्षा आजकल भारतीय लड़कियों को दी जा रही है उससे उनकी बौद्धिक दिशा का पश्चिमी आदर्शों पर विकास हो जाता है, किन्तु उससे हमारे घरेलू जीवन का सौंदर्य बिलकुल नष्ट हो रहा है। जीवन की एक उत्कृष्ट दिशा का सौंदर्य नष्ट करके, दूसरी दिशा का पनपना, या किसी अंश में विकसित होना, देश की अवस्था और आवश्यकताओं के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ। अनुभवी भारतीय शिक्षा-मर्मज्ञ भी आजकल यह बात कहते सुने जाते हैं कि स्त्रियों का मुख्य कार्यक्षेत्र घर ही है, घरेलू जीवन की उपेक्षा करके, या सर्वथा उसे विनष्ट करके आजादी के नाम पर केवल घर से बाहर

अपने लिए कार्यक्षेत्र ढूँढ़ने के लिए दौड़ना, यह स्वयं स्त्रियों की उन्नति के लिए तनिक भी वांछनीय नहीं है। किन्तु स्त्रियों को घर के अन्दर बन्द करके रखना और उन्हें केवल बच्चे पैदा करने की मशीन ही बनाये रखना भी समाज की उन्नति के लिए अत्यन्त घातक है। प्रत्येक गृहिणी के ऊपर घर की व्यवस्था का भार छोड़ कर हमें उसे प्रत्येक दृष्टि से स्वस्थ, सुखी, भारतीय सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से शिक्षित और समुन्नत बनाना पड़ेगा। यों तो घरेलू जीवन को अच्छा या बुरा, स्वर्ग या नरक, बनाने के लिए स्त्री-पुरुष, दोनों ही समान रूप से जिम्मेदार हैं; किन्तु घर को सुखकर, शान्त, सुखद और पवित्र बनाने में स्त्री की बुद्धि-कौशल, कर्त्तव्य-परायणता और निस्पृह सेवा-भावना ही मुख्य कारण होती है। घरेलू व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालन करने में स्त्री की योग्यता ही मुख्य रूप से सहायक होती है। हाँ, जहाँ तक रुपये-पैसे, धनार्जन या बाहरी वस्तुओं का सम्बन्ध है, वहाँ तक पुरुष अपनी शक्तियों से, अपने पुरुषार्थ से जीवनोपयोगी वस्तुओं का संग्रह करके घर में लाकर रख देता है, किन्तु बाहर से लायी हुई जीवनोपयोगी वस्तुओं का आवश्यकतानुसार यथोचित उपयोग और उपभोग करना केवल स्त्री के बुद्धि कौशल और चातुर्य पर ही निर्भर है। पुरुष अपनी सारी बुद्धि और शक्तियों को लगाकर भी घरेलू व्यवस्था को उतना सुन्दर, सुखद और उपयोगी नहीं बना सकता जितना कि स्त्री। असल बात यह है कि घरेलू जीवन की और घरेलू व्यवस्था की प्राण है स्त्री। इसी कारण स्त्री को गृहिणी के नाम से पुकारा जाता है।

हमारा ख्याल है कि वर्तमान युग में कोई भी समझदार आदमी स्त्रियों को किसी प्रकार भी अनुचित रूप से दबाने या सताने का पक्षपाती नहीं हो सकता। प्रत्येक विचारशील आदमी स्त्रियों को व्यावहारिक रूप से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समानाधिकार देना और दूसरों से दिलाना पसन्द करेगा। स्त्रियों के सम्मान और गौरव की रक्षा करने के लिए 'पुरुष' नाम से पुकारा जानेवाला प्रत्येक व्यक्ति अपने प्राण देकर भी पीछे नहीं हटेगा। इस दशा में अत्यन्त विनय और आदर के साथ हम अपनी पढ़ी-लिखी बहनों से प्रार्थना

करेंगे कि वे अपनी आजादी, सम्मान-रक्षा और समानाधिकारों के लिए हर तरह से प्रयत्नशील होती हुई भी, अपने मन में प्रतिक्रियात्मक या लड़ाई-झगड़े की भावना को स्थान न दें। प्रतिक्रियात्मक विचारों का प्रभाव हमारे घरेलू जीवन के सौंदर्य का बिलकुल विनष्ट कर देगा।

३—ब्लैंक चेक

आज देश के एक सिरे से दूसरे सिर तक स्त्रियों के अधिकारों की चर्चा है। चारों ओर से यही आवाज आ रही है कि स्त्रियोंको भी जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें पुरुषों के समान अधिकार चाहिये। नारी जागरण के इन शुभ चिह्नों का हम हृदय से स्वागत करते हैं। इसके अतिरिक्त स्त्रियां एक बात और भी चाहती हैं; वह यह कि "यदि हमें विदेशी महिलाओं की तरह समुचित शिक्षा दी जाय तो हम भी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और व्यापारिक सभी क्षेत्रों में पुरुषोंसे टक्कर ले सकती हैं।" बेशक, वे इतना कर सकती हैं, बल्कि इरादा करने पर वे इससे भी अधिक आगे बढ़ सकती हैं। अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति के बलपर वे जो कुछ भी कर सकें वह थोड़ा है।

किन्तु प्रश्न यह है कि क्या उनके शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य पुरुषों से टक्कर लेना या प्रतिद्वन्द्विता करना ही होना चाहिये? यदि हां, तो शिक्षा प्राप्त करके भारतीय महिलाएं अवश्य पुरुषों से टक्कर लेकर, इस दलित देश का उद्धार कर देंगी! बहुत-सी देवियों-के इस प्रकार के विचार पढ़-सुनकर ही एक दिन मेरी एक बहिनने मुझ से कहा—

"आंखें मीचकर पाश्चात्य सुधारवाद के प्रवाहमें पड़कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, भारतीय स्त्रियों का पुरुषों से टक्कर लेने, उनसे प्रतिद्वन्द्वता करने, या प्रतिहिंसा के भाव से प्रेरित होकर उन्हें किसी प्रकार नीचा दिखाने की भावना का

उदय, समूचे भारतीय समाज के लिये, स्वयं स्त्रियों के लिये भी, एक ऐसा भयङ्कर खतरा है जिसका प्रत्येक समझदार स्त्री-पुरुष को जल्दी से जल्दी समुचित इलाज ढूंढ निकालना चाहिये।"

मेरे चुप रहने पर वे कहने लगीं—आपने इस सम्बन्ध में क्या सोचा है?

मैंने कहा—मेरी राय तो यह है कि भारतीय स्त्रियों को 'ब्लैंक चेक' दे देनी चाहिये, जिस पर वे अपने मन के मुताबिक सारे अधिकार लिख डालें और पुरुष नाम से पुकारे जानेवाले प्राणी, जो अब तक भारतीय स्त्रियों पर मनमाने जुल्म करते रहे हैं, उस चेक पर दस्तखत कर दें।

झट से वे बोल उठीं—वाह, यह भी कोई इलाज है? स्त्रियों को 'ब्लैंक चेक, दे डालने पर भारतीय स्त्रियां पुरुषों को परेशान करेंगीं, और यूरोप की तरह ही हमारे समाज में असन्तोष और कलह की ज्वाला जग उठेगी। यूरोप में क्या वहां के पुरुषों ने स्त्रियों को 'ब्लैंक चेक' नहीं दे दिया? फिर भी क्या वहां के समाज में शान्ति और सुख दिखाई पड़ता है?

इतने ही में एक दूसरे सज्जन बोल उठे—जनाब, स्त्रियों को 'ब्लैंक चेक' देने का नाम न लीजिये, अन्यथा स्त्रियां अपने पति से कहेंगी, "तुम घर में चूल्हा-चौका संभालो, बच्चों को खिलाओ और हम दफ्तर में काम करने जाती हैं!"

मैंने उत्तर दिया—इसमें हानि ही क्या है? शर्मदार पुरुषों को पहले हीसे 'ब्लैंक चेक' पर दस्तखत करके देवियों के लिये फील्ड खाली कर देना चाहिये, अन्यथा खैर नहीं, आखिर इतने दिनों तक पुरुषों ने स्त्रियों पर अत्याचार किया है और अब उसकी प्रतिक्रियात्मक भावना के रूप में स्त्रियों का नम्बर है।

इस पर बहिन ने कहा—तो यों कहिये कि आप स्त्रियों के डर से उन्हें 'ब्लैंक चेक' दे रहे हैं!

मैं बोला—नहीं बहिन, आपने समझने में थोड़ी गलती की है। डर से 'ब्लैंक चेक' देने में कोई महत्व नहीं है। मैंने तो केवल प्रेम, सद्भावना के बल पर ही स्त्रियों को 'ब्लैंक चेक' दे डालने की बात कही है। 'ब्लैंक-चेक' दे डालने की बात, पश्चिम के अधिकारवाद पर तनिक भी निर्भर नहीं, बल्कि

सचाई से, प्रेम से, मनुष्यता से, निष्कपट हृदय से किये गये आदर्श प्रेम पर निर्भर करती है। जहाँ जीवन में पुरुष-स्त्री का 'हृदय का सौदा' हो जाता है वहाँ कागजी सौदे और शर्त्तनामे रद्दी की टोकरी में नीचे पड़े रह जाते हैं। इस दशा में स्त्रियों को 'ब्लैंक चेक' दे डालने में हानि ही क्या है? कोई भी समझदार आदमी इसका विरोध क्यों करे?

बहिन मेरी इस बात से अन्त तक सहमत नहीं हुईं। वे मेरे इस ढंग पर कुछ चिन्तित हो कर कहने लगीं—"भाई जी, स्त्रियों के हाथ में एक दम 'ब्लैंक चेक' पहुँच जाने से समाज में बड़ी गड़बड़ी फैल जायगी, चारों ओर अन्धेर ही अन्धेर दिखाई देगा, उच्छृङ्खलता और अनाचार का दौर दौरा नजर आयेगा!

मैंने तनिक आश्वासन देते हुए कहा—जब स्त्रियों के हाथ में 'ब्लैंक चेक' देने का परिणाम यह होगा, यदि जीवन के किसी क्षेत्र में पुरुषों के बिना काम न चलेगा, तब पुरुष तुरन्त ही अपना कन्धा लगा कर फिर स्थिति को संभाल लेंगे; जब आज स्त्रियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में 'पुरुषों से टक्कर लेने' को तैयार हैं तब क्या उस समय पुरुषों में इतनी क्षमता न होगी कि वे अपना कन्धा लगा कर समाज की बिगड़ती हुई स्तिथि को संभाल ल और वास्तव में अपना पुरुषार्थ दिखा कर अपने 'पुरुष' नाम को सार्थक करें? और यह भी, स्त्रियों से प्रतिद्वन्द्विता करने के लिये, या अधिकारों के लिये नहीं बल्कि विशुद्ध कर्तव्य की प्रेरणा से प्रेरित होकर।

मेरी बहिन की समझ में अन्त तक यह बात नहीं आयी। वे बराबर यही कहती रहीं कि एक बार बिगड़ी हुई स्थिति फिर नहीं संभल सकती, इसलिये पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही पारस्परिक सहयोग, सहानुभूति, सद्भावना, प्रेम और कर्तव्य की डोरी में बंधकर आरम्भ ही से ऐसा उद्योग करें, जिससे स्थिति बिगड़ने ही न पावे। भारत, भारत है और यूरोप, यूरोप। जो बात यूरोप में ठीक है, या वहाँ के समाज को समुन्नत और ऊँचा उठाने वाली है, ठीक वही बात यहाँ भी उतनी ही हितकर और उपयोगी सिद्ध होगी, इस बात

की कोई गारण्टी नहीं की जा सकती। यह इसलिये कि, भारतीय सभ्यता, संस्कृति और आदर्श यूरोप की सभ्यता, संस्कृति और आदर्श से भिन्न हैं। हमें स्त्री-पुरुष दोनों ही को, अपने कल्याण के लिये ऐसे साधन ढूंढ़ने पड़ेंगे जो हमारे देश के उन उत्कृष्ट आदर्शों के अनूकूल हों, जो वास्तव में मानव-जीवन को ऊंचा और समुन्नतन बनाते हैं। अपनी बहन की बातें सुन कर मैं उनके पास से चुपचाप चला आया और मन ही मन उनके विचारों पर विचार करता हुआ सोचने लगा कि मालूम पड़ता है कि अभी उनके मन और मस्तिष्क पर आधुनिक सभ्यता का गहरा रंग नहीं चढ़ा, तभी वे इस प्रकार की बातें करती हैं।

४—अधिकार या कर्त्तव्य ?

अक्टूबर की 'सरस्वती' में आनरेबुल पं० प्रकाशनारायण सप्रू ने एक लेख लिखा है—'हिन्दू-समाज में तलाक़ की आवश्यकता'। उसमें वह कहते हैं—"नारद और पाराशर की स्मृतियों के पढ़ने से मालूम होता है कि पुराने ज़माने में हिन्दू-समाज में तलाक़ की व्यवस्था थी। और तलाक़ की ज़रूरत रोज़-रोज़ बढ़ती जायगी, ज्यों-ज्यों स्त्रियों में जागृति और शिक्षा बढ़ेगी। शिक्षा के साथ विवाह में समझौते का भाव अधिक कठिन होता जायगा। शिक्षा का असर यह अवश्य होगा कि स्त्रियाँ अपने पति को पहले की भाँति देवता और रक्षक नहीं मानेंगी। वे बराबरी का बर्ताव चाहेंगी, और दो बराबरी के दर्जे-वालों का साथ रहना ज़रा आसान नहीं होता।" सप्रू साहब की बातों में बहुत कुछ सचाई है। इसलिए कि जिस वातावरण में उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई है, उसमें केवल यही भावना शिक्षित स्त्री-पुरुषों के मन और मस्तिष्क पर शासन कर रही है। वह स्पष्ट देखते और अनुभव करते हैं कि पढ़-लिखकर विवाह

में समझौते का भाव अधिक कठिन होता जायगा और ज्यों-ज्यों स्त्रियों में जागृति और शिक्षा बढ़ेगी, त्यों-त्यों तलाक़ की ज़रूरत दिन पर दिन बढ़ती जायगी। स्त्रियों की आधुनिक शिक्षा और जागृति की न्यामत के रूप में तलाक़ की बढ़ती हुई ज़रूरत का जो तोहफ़ा भारतीय-समाज को मिलेगा, उसी की विचार-धारा से इस लेख का सम्बन्ध है।

सप्रू साहब ने फ़रमाया है कि नारद और पाराशर की स्मृतियों के अनुसार पुराने ज़माने में हिन्दू-समाज में तलाक़ की व्यवस्था थी। हाँ, तलाक़ की व्यवस्था थी; किन्तु आमतौर पर तलाक़ की प्रथा या रीति का प्रचलन नहीं था। अनिवार्य आवश्यकता पड़ने पर, परिस्थिति या दशाविशेष में हिन्दू-स्त्री-पुरुष एक दूसरे से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया करते थे। परन्तु आज तो शिक्षा और जागृति के साथ ही तलाक़ की ज़रूरत रोज़-रोज़ बढ़ती नज़र आरही है, और इस बढ़ती हुई ज़रूरत का प्रचार करने के लिए 'नारद और पाराशर स्मृतियों' की दुहाई दी जा रही है। पुराने ज़माने में हिन्दुओं में ब्रह्मचर्य, संयम, सदाचार आदि जीवन को ऊँचा उठानेवाले सद्‌गुणों का विकास करने की भी तो व्यवस्था और प्रथा थी! फिर समझ में नहीं आता कि बढ़ती हुई ज़रूरतों को पूरा करने का इलाज ढूँढने के लिए धर्म-ग्रन्थों की दुहाई देते समय हमारे समझदार लोगों की तेज़ नज़र हिन्दुओं की पुरानी सामाजिक व्यवस्था की इस नैतिक दिशा पर क्यों नहीं पड़ती!

तलाक़ के पक्ष और विपक्ष में बहुत-सी युक्तियाँ दी जा सकती हैं। युक्तियाँ युक्तियों ही के लिए हों, इस सिद्धाँत के हम क़ायल नहीं हैं। हमें तो केवल इस प्रश्न पर विचार करना है कि किन आदर्शों को सामने रखकर भारतीय स्त्री-पुरुषों का घरेलू और पारिवारिक जीवन सुखी, स्वस्थ और सफल हो सकता है, और किस विचार-धारा को अपने जीवन में प्रविष्ट करके हम आधुनिक युग की ज़रूरतों के अनुसार अपने जीर्ण-शीर्ण समाज का नये सिरे से निर्माण कर सकते हैं?

भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा बहुत हीन है। वे पशुओं से भी गई-बीती अवस्था में किसी तरह अपने जीवन के दिन काट रही हैं। यह अवस्था

अधिक समय तक नहीं रह सकती। देश के समझदार स्त्री-पुरुष दोनों ही पारस्परिक सहयोग से इस हीन अवस्था का अन्त कर सकते हैं। कोई भी समझदार और सहृदय व्यक्ति स्त्रियों पर जुल्म होते हुए नही देख सकता। न्याय और मनुष्यता के नाम पर हिन्दू-समाज की व्यवस्था में आवश्यक और उचित परिवर्तन के साथ ही हिन्दू-क़ानून में इतना सुधार अवश्य होना चाहिए कि जो स्त्री अपने पति के जुल्मों से बहुत तंग आ चुकी हो, जिसका पति के साथ रहना बिलकुल असंभव हो गया हो और घर-बाहर के लोगों के भरसक प्रयत्न करने पर भी, पति-पत्नी दोनों ही के मेल से रह सकने की सारी आशाएँ टूट चुकी हों, उस दशा-विशेष में, अत्याचार-पीड़िता स्त्री को पूरी आज़ादी होनी चाहिए कि वह स्वेच्छानुसार अपने पति से सम्बन्ध-विच्छेद कर अपनी दूसरी शादी कर सके। क़ानून में इस बात की पूरी व्यवस्था रहे, जिससे किसी अत्याचारपीड़ित असहाय स्त्री के उचित और न्याय्य हक़ों की रक्षा हो सके। बस, तलाक़ को हम दशा-विशेष ही में भारतीय समाज के लिए आवश्यक मानते हैं; किन्तु रोज़-रोज़ बढ़ती जानेवाली ज़रूरत के रूप में नहीं।

संयम और सदाचार की रक्षा की पुनीत भावना पुरुष के लिए भी उतनी ही ज़रूरी और जीवनोपयोगी है, जितनी कि स्त्री के लिए। चरित्र की दृढ़ता और उज्ज्वलता पुरुष के जीवन को समुन्नत बनाने के लिए उतनी ही आवश्यक है, जितनी कि स्त्री के लिए। शिक्षा और ज्ञानार्जन, स्त्री और पुरुष के जीवन को ऊँचा और पवित्र बनाने के लिए समान रूप से आवश्यक और उपयोगी है। परन्तु आज के भारतीय समाज में इस बात की उपेक्षा की गई है, इसी कारण स्त्रियों के रूप में देश का आधा और बहुमूल्य अंग बिलकुल निर्जीव पड़ा हुआ है। इस दशा का अन्त करने के लिए हमें भारतीय नारी-समाज को शिक्षित बनाकर उसका आत्मोद्धार करना होगा। स्त्रियों को विकास के मार्ग में खड़ी हुई रूढ़ियों तथा अन्याय और ज़ुल्म की चट्टान को तोड़कर चूर-चूर कर डालना होगा। किन्तु यह सब सुधार होगा भारतीय संस्कृति और आदर्शों की आधारशिला पर। स्त्रियों में शिक्षा और सुधार, तालीम और तरबियत, दोनों ही साथ-साथ चलेंगे। शिक्षा तभी सार्थक कही जायगी, जब

वह देश की लड़कियों का सुधार करेगी। इसी दृष्टि से देश की वर्तमान आवश्यकताओं के अनुसार हमें आधुनिक एकाँगी शिक्षा का दृष्टिकोण भी बदलना पड़ेगा। स्त्रियों को शिक्षित बनाने से हमारा अभिप्राय उन्हें ऐसी एकाँगी शिक्षा (One sided education) में शराबोर कर देने का हर्गिज़ नहीं है, जिससे रोज़-रोज़ उन्हें अपने पतियों को तलाक़ देने की ज़रूरत बढ़ती जाय। हमारा खयाल है कि यदि भारतीय नारी-समाज में रोज़-रोज़ तलाक़ की ज़रूरत बढ़ती जायगी, तो इससे देश की स्त्रियों का ठीक दिशा की ओर आत्म-विकास न होगा, किन्तु होगा उनके जीवन का विनाश। स्त्री-जीवन के विनाश के साथ ही समूचे भारतीय समाज का जीवन खतरे में पड़ जायगा। क्यों? इसलिए कि आमतौर पर शिक्षित स्त्रियों में तलाक़ की प्रथा प्रचलित होने के कारण हमारे घरेलू और पारिवारिक जीवन के उस सुख-स्रोत और आनन्द का सदा के लिए अन्त हो जायगा, जिसकी धारा अधिकांश हिन्दुओं के घरों में आज भी देखने को मिलती है। अमेरिका और योरप के देशों में आमतौर पर तलाक़ की प्रथा का प्रचलन है। वहाँ इस प्रथा से शिक्षित समुदाय की बढ़ती हुई ज़रूरतें पूरी हो रही हैं; किन्तु फिर भी सुख शान्ति का वहाँ नाम तक नहीं। यदि तलाक़-प्रथा से वहाँ का नये सिरे से बना हुआ समाज तनिक भी सुख-शान्ति पाता होता, तो आज अमेरिका के मि० लिण्डसे-जैसे विद्वान् और अनुभवी जज को अपने देश की कुमारी लड़कियों और उन स्त्रियों की नैतिक दशा पर आँसू न बहाने पड़ते, जो केवल वासनाओं की भट्टी में गिरकर नित्य एक नया विवाह करती और बार-बार अपने जीवन को कलुषित करती हुई दिखाई देती हैं। योरप और अमेरिका के देशों की रिपोर्टों के पन्ने ऐसे मामलों से भरे पड़े हैं, जिनमें यों ही चलते-फिरते कारण बताकर अगणित स्त्री-पुरुषों ने अदालत के सामने एक दूसरे को तलाक़ दे दिया। शिक्षा और जागृति के साथ-साथ जिस तरह तलाक़ की प्रथा पाश्चात्य देशों में एक साधारण और नित्य की बात हो गई है, उसी तरह वही प्रथा अब शिक्षित भारतीयों में भी प्रचलित करने की कोशिश की जा रही है। परन्तु हमारे देश की परिस्थिति और दृष्टिकोण पाश्चात्य देशों से भिन्न है। इसी कारण भारतीय

समाज में तलाक़ का प्रचलन एक आम प्रथा के रूप में नहीं, किन्तु आवश्यक और उपयोगी संशोधित व्यवस्था के रूप में, परिस्थिति-विशेष ही में हो तो अच्छा। नये सिरे से भारतीय समाज के निर्माण का स्वप्न देखनेवाले दिमाग़-दार आदमी, यदि अन्य देशों की सामाजिक स्थिति का अनुशीलन करके, उससे कुछ व्यावहारिक सबक़ सीख सकें, तो, हमारे देश के लिये बड़ा श्रेयस्कर हो।

स्त्री और पुरुष

भारतीय सभ्यता, संस्कृति और आदर्शों के अनुसार स्त्री और पुरुष गृहस्थी की गाड़ी के दो पहिये हैं। उन्हीं पहियों पर गृहस्थी की गाड़ी चलती है। यदि उनमें से एक भी पहिया निकम्मा और कमज़ोर होकर टूट जाय, तो गाड़ी एक क्षण-भर नहीं चल सकती। इसलिए गृहस्थी की गाड़ी को मंज़िले-मक़सूद तक बेखटके चलाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि दोनों पहिये बहुत मज़बूत हों। स्त्री और पुरुष दोनों ही स्वस्थ और कर्त्तव्यपरायण हों, तभी वे अपना-अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए पारस्परिक सहयोग से गृहस्थी की गाड़ी सफलतापूर्वक चला सकते हैं, अन्यथा नहीं। परन्तु यदि पढ़-लिख-कर स्त्रियों में रोज़-रोज़ तलाक़ की ज़रूरत बढ़ती जायगी, तो यह निश्चित है कि भारतीय गृहस्थ-जीवन का अन्त हो जायगा। और, जिस समाज में घरेलू या पारिवारिक जीवन का अन्त हो चुका हो, उसमें सुख और शान्ति कहाँ! जिस शिक्षा से हमारी लड़कियों में रोज़-रोज़ तलाक़ की ज़रूरत बढ़े, जो शिक्षा हमारे गृहस्थ-जीवन के नाश का कारण बन जाय, जो शिक्षा हमारे चरित्र का सर्वनाश करके हमें नैतिक दृष्टि से दिवालिया बना दे, अच्छा हो कि उस शिक्षा से हम, स्त्री-पुरुष दोनों ही, बिलकुल वञ्चित रहें। क्यों? इसलिए कि धर्म, नीति और सदाचार के ऊँचे आदर्शों के रूप में इस देश ने अपना सब कुछ खोकर भी, वह अमूल्य सम्पदा, विशुद्ध और संस्कृत चरित्र की वह बहुमूल्य निधि, सुरक्षित रक्खी है, जिसके सामने आज भी संसार के बड़े से बड़े तत्त्ववेत्ता और महापुरुष श्रद्धा से अपना मस्तक झुकाते हैं। देवी मीरा,

पद्मिनी, दुर्गावती, तथा भारतीय नारीत्व की अन्तिम ज्वलन्त ज्योति महारानी लक्ष्मीबाई की पुण्य स्मृतियाँ, उनके विशुद्ध और ऊँचे चरित्र के आदर्श आज भी संसार के स्त्री-पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करते और उन्हें कठोर कर्त्तव्य का पाठ पढ़ाते हैं। इन देवियों की उज्ज्वल कृतियों से भारतीय इतिहास के अनेक महत्वपूर्ण अध्याय लिखे गये हैं। वे देवियाँ किसी कालेज में नहीं पढ़ी थीं। उनके दृढ़ चरित्र का निर्माण किसी युनिवर्सिटी की डिग्री लेकर नहीं हुआ था। उनके पवित्र जीवन में आज के समता, स्वाधीनता और बंधुत्व के भावों का भी एकदम अभाव नहीं था। वे परिस्थितियों की ग़ुलाम नहीं बन सकीं। समय पड़ने पर घर, परिवार, विवाह, सम्बन्ध आदि के बन्धन उनको बाँधकर घर की सङ्कीर्ण चहारदीवारी के अन्दर नहीं रख सके, और उन्होंने रण-प्राङ्गण में पहुँचकर अपने सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों की विजय-दुन्दुभी बजा दी। हम चाहते हैं कि पढ़-लिखकर हमारे देश की लड़कियों को मीरा और लक्ष्मीबाई के आदर्श अपनी ओर आकर्षित करें। शिक्षा पाकर उनके चरित्र का निर्माण और विकास उन्हीं आदर्शों पर हो। शिक्षा के असर से "स्त्रियाँ अपने पति को पहले की भाँति देवता और रक्षक" न मानें, किन्तु वे व्यर्थ के लिए उन्हें अपना भक्षक और शत्रु भी क्यों समझ लें? वे अपने पति से बराबरी का बर्त्ताव ज़रूर चाहें, और उससे सम्मान की आशा भी रक्खें; किन्तु ऐसा करने के लिए क्या यह आवश्यक नहीं कि वे स्वयं भी अपने पति के साथ नम्रता और सम्मान का बर्त्ताव करें? पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ जिस सम्मानपूर्ण बर्त्ताव की आशा अपने पति से करें, उसके लिए उन्हें स्वयं भी तो तैयार होना पड़ेगा? परन्तु जिस शिक्षित समाज में परिवार के मामलों में यह भाव घर कर ले कि "दो बराबरी के दर्जेवालों का साथ रहना ज़रा आसान नहीं होता", उसमें तलाक़ के आदर्श की पूजा हो, तो ताज्जुब ही क्या है?

स्त्री और पुरुष की समानता की भावना पहले-पहल पश्चिम के उस वातावरण में जन्मी और फली-फूली, जहाँ समाज का निर्माण केवल अधिकारवाद की भित्ति पर हुआ है। वहाँ समाज नैतिक आदर्शों की अपेक्षा

राजनीतिक आदर्शों पर अधिक चलता है। पश्चिमी समाज में मानवीय सम्बन्ध ठेका-ठहराव या बराबरी से देनलेन की भावना पर चलते हैं। और, चूँकि पाश्चात्य पुरुष और स्त्री दोनों ही मानव-समाज का एक अङ्ग हैं, अतः वे मानवीय सम्बन्ध के उसी सिद्धान्त को परस्पर व्यवहार में लाते हैं। इसी कारण वहाँ पुरुष-पुरुष के और पुरुष-स्त्री के पारस्परिक व्यवहार में भी ठेका या साझेदारी की भावना पाई जाती है। इस दृष्टि से पाश्चात्य समाज में व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध में भी राजनीति को अत्यधिक महत्व दिया गया है। पारस्परिक आक्रमण और झगड़े से बचाव करने तथा पारस्परिक रक्षा और शान्ति के लिए समाज में एक मनुष्य का सम्बन्ध दूसरे से ठेका या साझे की भावना से बराबरी का हो, यह बात तो समझ में आती है—यद्यपि यह ढंग असंस्कृत जीवन का चिह्न है, ऊँची और आदर्श सभ्यता का द्योतक नहीं; परन्तु यह बात तो बिलकुल असंभव और अवाञ्छनीय मालूम होती है कि पुरुष और स्त्री में भी ठीक वही साझे या ठेके की भावना का सम्बन्ध स्थापित कर लिया जाय, जो एक पुरुष का दूसरे पुरुष से होता है। क्यों? इसलिए कि पुरुष और स्त्री स्वभावत: एक ही सतह पर खड़े होकर समान रूप से एक दूसरे से अपने अधिकारों पर बहस करने के लिए नहीं मिलते, बल्कि वे दोनों ही उस प्राकृतिक प्रेरणा से प्रेरित होकर इकट्ठे हो जाते हैं, जिसे मानवीय सभ्यता ने एक सुसंस्कृत और उच्च भावना का रूप दे दिया है। उसी उच्च भावना को हम प्रेम के नाम से पुकारते हैं। पुराने भारतीय समाज में, उस समाज में जब कि नारद और पाराशर स्मृतियाँ बनी थीं और स्त्री के न्याय्य स्वत्वों की रक्षा के लिए तलाक़ की व्यवस्था की गई थी, स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध उसी प्राकृतिक प्रेरणा की आधार-शिला पर स्थापित था, जिसे आज हम प्रेम के नाम से पुकारते हैं। जहां स्त्री-पुरुष में प्रेम की भावना स्वाभाविक रूप में अपनी अटल सत्ता जमाये बैठी हो, वहाँ अधिकारों की क्या चर्चा और तलाक़ का कहाँ ठिकाना! दो व्यक्तियों में, स्त्री और पुरुष में, अधिकारों की छीना झपटी और तलाक़ की चर्चा तभी चलेगी, जब दोनों के हृदय स्वार्थ, विद्वेष और अहंकार की कलुषित भावना से मलिन हो गये हों।

स्त्री और पुरुष, दोनों ही एक दूसरे के बिना अपूर्ण हैं ! समाज के निर्माण के लिए दोनों ही ज़रूरी हैं, और वे दोनों ही एक दूसरे की अनिवार्य आवश्यकताएँ पूरी करते हैं। दोनों ही को एक दूसरे की ज़रूरत पड़ती है और एक दूसरे की सहायता के बिना दोनों ही का काम नहीं चल सकता। प्रकृति ने दोनों ही में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध स्थापित कर दिया है। स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध में अधिकारों की छीना-झपटी की तरह यह बात उठती ही नहीं कि अगर तुम मेरे लिए यह काम कर दो, तो मैं तुम्हारे लिए वह काम कर दूँगा। यह प्रश्न तो क़तई नहीं उठता, इसलिए कि वे दोनों ही अवश्य एक साथ मिलेंगे, चाहे अगर हो, चाहे मगर। स्त्री और पुरुष के पारस्परिक प्रेम-सम्बन्ध में अगर-मगर और अधिकारवाद नहीं चल सकता। स्त्री और पुरुष में जहाँ अत्यधिक अगर-मगर और अधिकारवाद चलता है, वहाँ से घरेलू जीवन का आनन्द पारिवारिक शान्ति और सुख सदा के लिए किनारा कर जाते हैं। स्त्री और पुरुष का सम्मिलन दो व्यक्तियों के रूप में नहीं, किन्तु एक ही अविच्छिन्न शरीर के दो आवश्यक अङ्गों के रूप में होता है। यदि एक भाग दूसरे के साथ मिलकर उसे पूर्ण बनाने में सहायक नहीं होता, तो उसकी दूसरे से समानता और असमानता की बातें करना बिलकुल व्यर्थ और विडम्बना-मात्र है। इस दशा में स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध में अधिकारवाद की चर्चा से स्थिति दिन पर दिन बिगड़ती ही जायगी और स्त्री-पुरुष दोनों की प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ अधिकाधिक दबती ही जायँगी, वे संस्कृत और उच्च आदर्श की ओर अग्रसर न होंगी। स्त्री और पुरुष की समानता की समस्या पर प्रकाश डालते हुए समाज-शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् डा० धीरेन्द्रनाथ राय ने लिखा है—

"Why should there arise any question of equality or inequality of the two sexes when the two are complementary, when the one supplies the inevitable needs of the other? The union of the two is a necessary condition of society. It is, therefore, proper

on the part of a healthy society to see that this union is real. But there is no real union where both are self-conscious individuals unwilling to be merged into one."

अर्थात् स्त्री और पुरुष दोनों की समानता और असमानता का प्रश्न ही क्यों उठना चाहिए, जब कि वे एक दूसरे की कमी को पूरा करनेवाले हैं, जब कि एक दूसरे की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करता है ? दोनों का एकीकरण समाज की एक आवश्यक शर्त है। इसलिए एक स्वस्थ समाज के लिए उचित है यह देखना कि यह एकीकरण वास्तविक या यथार्थ हो। परन्तु ऐसे दो आत्म-चेतनावाले व्यक्तियों में, जो एक में समा जाने के लिए अनिच्छुक हो, यथार्थ एकीकरण नहीं होता।

प्राचीन हिन्दू-आदर्श के अनुसार तथा आधुनिक समाज-शास्त्र के अनुसार भी स्त्री और पुरुष के यथार्थ एकीकरण का अर्थ है आत्म-विस्मृति। दोनों के बीच में आत्म-विस्मृति की भावना तभी जग सकती है, जब कि एक के विचारों का केन्द्र दूसरा हो। जब एक के विचार पूर्णतया दूसरे पर केन्द्रीभूत हो जायं, तभी स्त्री और पुरुष दोनों में आत्म-विस्मृति की भावना जग उठेगी। इस दशा में दोनों ही आत्म-समर्पण के पवित्र भावों में विभोर होकर एक दूसरे में तन्मय हो जायँगे, और ऐसा करते समय वे दोनों ही अपने-आपको भूल जायँगे। उस समय स्त्री और पुरुष का कोई अलग अस्तित्व न रहेगा। स्त्री पुरुष के अन्तःकरण के सिंहासन की अधिष्ठात्री देवी होगी और पुरुष स्त्री के हृदय-प्रदेश पर शासन करनेवाला देवता। यही प्रेम हिन्दुओं की प्राचीन गृह-व्यवस्था का मूल-मंत्र है। इसी प्रेम के बल पर, आज हज़ारों वर्ष बीत जाने पर भी, वर्त्तमान सभ्यता की चकाचौंध से कोसों दूर, एक झोपड़ी में बैठी हुई, भारतीय किसान की पतिपरायण स्त्री अपने गृह-जीवन को सुखमय बना रही है और अपनी निस्पृह सेवा, त्याग और कर्त्तव्य-पालन की पुनीत साधना से भूतल पर अमृत की वर्षा कर रही है। हमारी पढ़ी-लिखी शिक्षित कहलानेवाली लड़कियाँ

अब भी भारत के झोपड़ों में रहनेवाली किसान और मज़दूर स्त्रियों से चरित्र-निर्माण की शिक्षा ले सकती हैं। अपढ़-कुपढ़ किसान-मज़दूर स्त्री-पुरुषों में आधुनिक शिक्षा और ज्ञान की प्रकाश-किरणें नहीं पहुँचीं, किन्तु फिर भी ऐसे मानवीय दुर्लभ गुणों से उनके स्वच्छ हृदय ओत-प्रोत हैं, जिनकी जीवन-संग्राम में हमें अपना अस्तित्व क़ायम रखने के लिए पद-पद पर ज़रूरत पड़ती है। किसान और मज़दूरों के दाम्पत्य जीवन को अधिक पास से देखने पर पता चलेगा कि उनमें उस अद्भुत प्रेम और आत्म-विस्मृति की भावना पर्याप्त रूप में पाई जाती है, जिसकी चर्चा ऊपर की गई है।

हृदय की वाटिका में प्रेम-कली प्रस्फुटित हो जाने पर पुरुष स्त्री में और स्त्री पुरुष में अपने सारे विचारों को केन्द्रीभूत करके आत्म-विस्मृति के आनन्द में विभोर हो उठती है। वे एक दूसरे में अपने-आपको भूल जाते हैं। यह बात प्राकृतिक प्रेरणा से हुए दोनों के पाशविक एकीकरण से भी सिद्ध है, फिर चाहे वह एकीकरण क्षणिक ही क्यों न हो। जब यह प्राकृतिक प्रेरणा सभ्यता ने ऊँची भावना की तरह टिकाऊ प्रेम के रूप में परिणत कर दी है, तब एक का विचार-केन्द्र अपने आपसे हटकर प्रेमी के ऊपर स्थायी रूप से स्वभावतः स्थिर हो जाता है। इस आदर्श प्रेम की दशा में स्त्री और पुरुष, दोनों ही अपने-अपने कर्त्तव्य का ख़याल करेंगे, अधिकारों का नहीं। आदर्श दम्पति के बीच लड़ाई, झगड़ा, द्वेष, अधिकारों की तनातनी आदि बातें उठती ही नहीं। उनके हृदय में समानता, असमानता, बड़े, छोटे और व्यक्तिगत अधिकारों की भावना उठने ही नहीं पाती। उस समय दोनों ही की अपने-आपको एक दूसरे से अलग ख़याल करने की भावना बिलकुल उड़ जाती है; इसलिए कि वह दूसरे के ख़यालों में डूब जाती है। वास्तव में सभ्य समाज कर्तव्य के सिद्धांतों पर आधारित होता है; इसलिए कि उसका गठन प्रेम की भित्ति पर होता है और केवल प्रेम ही यथार्थ रूप से निर्माण का काम कर सकता है। यह समाज बालू की भीत की तरह क्षण-भंगुर है, जहाँ अधिकारों की भावना कर्त्तव्य की भावना को दबा कर रखती है, और जहाँ थोथी राजनीति, नीति और सदाचार का स्थान ग्रहण कर लेती है।

आधुनिक युग के बड़े-बड़े नीति-शास्त्री और समाज-शास्त्री भी आज यह बात मानने में तनिक भी सङ्कोच नहीं करते। रसल, बर्नार्डशा, रोमेरौलाँ, डाक्टर सण्डरलैंड आदि आधुनिक विचारक और विद्वानों के विचार हमारी इस बात के प्रमाण हैं।

लङ्का में बसने वाली अनेक जंगली जातियों का सम्बन्ध उस प्राचीन द्रविण- जाति से है, जो किसी समय भारतवर्ष में बसी हुई थी। उन जातियों के लोग आधुनिक सभ्यताओं की घुड़दौड़ में इतने पिछड़े हुए हैं कि वे बर्त्तन आदि घरेलू काम-काज की चीजें भी नहीं बना सकते। उनका भोजन भी बहुत रद्दी-सा होता है। वे कोई कपड़ा नहीं पहनते और बहुत मैले-कुचैले तथा गन्दे रहते हैं। परन्तु उनमें भी एक ऐसी वर्णनीय विशेषता होती है, जिसकी चर्चा करने के लोभ को हम संवरण नहीं कर सकते। उन जंगली जातियों के लोग दयालु, प्रेमी और अपनी पत्नियों के विश्वासपात्र होते हैं, तथा बहु-विवाह से घृणा करते हैं। उनके यहाँ यह कहावत प्रचलित है— "केवल मृत्यु ही पति और पत्नी को एक दूसरे से अलग कर सकती है!" *

उन बेचारे अपढ़-कुपढ़ लोगों में आधुनिक सभ्यता की आँखें चकाचौंध करने वाली बातें नहीं पहुँचतीं। हमारे दिमागदार शिक्षित लोगों के उन विचारों की वहाँ गंध तक नहीं पहुँचती, जिनके बल पर वे अपने देश की पढ़ी-लिखी लड़कियों के सामने तलाक की बढ़ती हुई ज़रूरतों का प्रचार करते हैं।

लङ्का के द्राविड़-जाति के दयालु, प्रेमी और चरित्रवान् लोग आज भी उन लोगों को चरित्रनिर्माण का कर्तव्य-पाठ पढ़ा सकते हैं, जो शिक्षित कहे जाते हैं। वे बेचारे हमारी तरह आधुनिक युनिवर्सिटियों में पढ़ कर डिग्रीधारी नहीं हैं। प्रेम, दया और चरित्र की दृढ़ता के उज्ज्वल परम्परागत विचार उनकी नस-नस में भिदे हुए हैं। शिक्षा पाकर हमारा मन और मस्तिष्क इतना 'विकसित' हुआ कि दिन-पर-दिन बढ़ती जाने वाली ज़रूरतों के फेर

---

*Lord Avebury, in "Pre-historic Times."

में पड़ कर हम अपने चरित्र तथा उन मानवोचित गुणों से भी हाथ धो बैठे, जो आज तक जंगली जातियों में पाये जाते हैं। स्त्री और पुरुष के व्यक्तिगत मामलों में, अपने घरेलू और पारिवारिक जीवन में भी हम कर्तव्य के स्थान पर उस थोथे अधिकार की प्राण-प्रतिष्ठा करने चले हैं, जिसके कड़वे फल आज योरप और अमेरिका के समाज को चखने पड़ रहे हैं। ऐसा करते समय हमारे दिमाग़दार आदमी नारद और पाराशर स्मृतियों के आधार पर हिन्दुओं की पुरानी व्यवस्था का सहारा लेते हैं। किन्तु वे आँखें खोल कर गहराई से उस व्यवस्था का अनुशीलन नहीं करते—आधुनिक संसार की समाज-व्यवस्था के साथ उसका तुलनात्मक अध्ययन करके अपने मौलिक निष्कर्ष निकालने की क्षमता नहीं रखते। इसी कारण हमारी समझ में उनके विचार एकांगी और देश के लड़के-लड़कियों को गुमराह करने वाले हैं। हमारा अनुरोध है कि शिक्षित लड़के और लड़कियाँ, दोनों ही भारत की प्राचीन समाज-व्यवस्था का, उसके यथार्थ रूप में अध्ययन करें, और उसके गुण-दोषों का विवेचन करके पाश्चात्य समाज-व्यवस्था से उसकी तुलना करें। पूर्व और पश्चिम दोनों की समाज-व्यवस्था का तुलनात्मक विवेचन करके ही तलाक़ के सम्बन्ध में वे अपने विचार स्थिर करें। पूर्व और पश्चिम की समाज-व्यवस्था को वे अपनी आँखों से गहराई से देखें, केवल एकांगी शिक्षा का चश्मा लगा कर उन दोनों का ऊपरी आवरण देख कर ही कोई ग़लत-सलत फ़तवा न दे डालें।

हिन्दू-धर्मशास्त्र के अनुसार पुरुष और स्त्री, दोनों ही तभी पूर्णता को प्राप्त होते हैं, जब वे विवाहित जीवन व्यतीत करते हुए पुत्र उत्पन्न करें, और कर्मनिष्ठ, स्वस्थ, सदाचारी एवं आदर्श दम्पति के रूप में सफलता से गृह-जीवन यापन करें। परन्तु उनके गृह-जीवन की भित्ति में दृढ़ता से कर्तव्य की भावना जमी हुई हो, अधिकार की नहीं। पुरुष अपनी स्त्री के साथ मिलकर ही एक होता है। इसी कारण स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी कही जाती है। कालिदास के प्रसिद्ध नाटक में शकुन्तला कहती है—

"पत्नी अपने पति की अर्द्धांगिनी है। अपनी पत्नी से बढ़ कर मनुष्य का कोई मित्र नहीं है। पत्नी गुण, सम्पत्ति और आनन्द का मुख्य कारण है। पत्नी मुक्ति की जड़ है। मधुरभाषिणी पत्नियाँ हर्ष के अवसरों पर सदा अपने पतियों के पास रहती हैं। वे बीमारी और संकट के समय सहायता करती हैं। इस कारण पत्नी मनुष्य की बहुमूल्य निधि है। आदमी को क्रोध में भी कोई ऐसा काम न करना चाहिए, जिससे उसकी पत्नी अप्रसन्न हो; क्योंकि उसी पर सारे घर की प्रसन्नता, आनन्द और सद्गुण निर्भर हैं।"

आधुनिक भारत के शिक्षित स्त्री-पुरुष, दोनों ही शकुन्तला के विशुद्ध प्रेम के आदर्श को हृदयंगत करें, और उसकी उस कर्तव्य-परायणता से कुछ सीखने का उद्योग करें, जिससे कठिन-से-कठिन समय में भी उसे अपने पथ में अविचल रूप से खड़ा रक्खा था।

सप्रू साहब ने तलाक़ की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए अपने लेख में यह भी कहा है—

"हम एक नये संसार में प्रवेश कर रहे हैं। और उस नये संसार के सिद्धांत हैं—स्वाधीनता और बराबरी के भाव। हमको अपने समाज को इन सिद्धांतों के ऊपर नये सिरे से क़ायम करना है।" हम नई दुनिया के इन नये भावों का स्वागत करते हैं और सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में स्वाधीनता और बराबरी के भावों की विजय-दुन्दुभी बजा देने के लिए आज भी तैयार हैं, हम अपने घरों और परिवारों का द्वार भी समता और स्वाधीनना के नये भावों के लिए बन्द नहीं करना चाहते। इन भावों का प्रवेश वहाँ भी हो। परन्तु अधिकारवाद के ये भाव वहाँ कर्तव्य के पुनीत भावों पर शासन नहीं कर सकते। वहाँ उन्हें कर्तव्य की सत्ता के नीचे संयत परिधि के भीतर रहना होगा, उच्छृंखल होकर नहीं। हम अपने भारतीय समाज का इन सिद्धांतों के ऊपर आधुनिक युग की ज़रूरतों के अनुसार नये सिरे से निर्माण करते हुए भी, अपनी पारिवारिक और घरेलू जीवन की पवित्रता और दृढ़ता

को सुरक्षित रखने के क़ायल हैं। पारिवारिक और घरेलू जीवन में समता और स्वतंत्रता की अपेक्षा प्रेम, सहानुभूति, सहृदयता और कर्तव्यपालन की कहीं अधिक ज़रूरत है। भारतीय स्त्री और पुरुष के बीच में तो केवल प्रेम और कर्तव्य की भावना चाहिए; इसलिए कि वे एक दूसरे के जीवन-सहचर हैं। रही यह बात कि शिक्षा के साथ ही विवाह में समझौते का भाव अधिक कठिन होता जायगा, सो यह वहाँ होगा, जहाँ विवाह महज़ एक सामाजिक ठेका (social contract) की तरह होता है, जो किसी भी समय छोटी-मोटी बात पर तलाक़ देने पर टूट सकता है। परन्तु भारतीय समाज में आज भी विवाह एक धार्मिक क्रिया के रूप में होता है, जिसमें पश्चिम के ठेके या साझेदारी की तरह का तनिक भी कोई भाव नहीं है। आज भी हिन्दू-समाज के विवाहों में अधिकारवाद की गंध तक नहीं होती। वहाँ केवल कर्तव्य और प्रेम की भावना ही प्रधान होती है। दहेज आदि सामाजिक कुरीतियों के कारण विवाह-प्रथा में इधर कुछ दोष ज़रूर घुस गये हैं, किन्तु इसमें विवाह के सुसंस्कृत भारतीय आदर्श का कोई दोष नहीं है। तलाक़ की रोज़-रोज़ बढ़ती हुई ज़रूरत का अर्थ है समाज में उच्छृंखलता, कामुकता, व्यभिचार, आदि जीवन को सर्वनाश के गहरे गर्त्त में गिरा देने वाले अवगुणों की वृद्धि। कोई भी समझदार और शिक्षित भारतीय माता-पिता अपनी लड़कियों को इसलिए शिक्षा देना हर्गिज़ पसंद न करेंगे कि शिक्षित होकर उन्हें रोज़-रोज़ अपने पतियों को तलाक़ देने की ज़रूरत पड़े। आजकल के शिक्षित भारतीय माता-पिता भी अपनी लड़कियों को संयम, सेवा, सदाचार, सादगी आदि जीवन को ऊँचा उठानेवाले सद्गुणों और उज्ज्वल आदर्शों की ओर प्रेरित करना और यथासमय विवाह करके उन्हें गृह-देवी बनाना पसंद करेंगे, न कि समता और स्वाधीनता के भावों में मग्न होकर रोज़-रोज़ तलाक़ की बढ़ती हुई ज़रूरतों को पूरा करने वाली महज़ फ़ैशन-परस्त लेडी बनाना। यह निश्चित है कि तलाक़ की रोज़-रोज़ बढ़ती हुई ज़रूरत से हमारे समाज में कामुकता और व्यभिचार बढ़ेगा। व्यभिचार की बढ़ती हुई ज़रूरतों की निन्दा संसार के प्रायः सभी समझदार आदमी करते हैं। अभी थोड़े दिन की

बात है, संसार के तेंतीस प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों, विज्ञान-वेत्ताओं और डाक्टरों ने एक लम्बी विज्ञप्ति प्रकाशित करके कहा था—

"We are of opinion that :—

In the interests of the race and the individual it is essential that the stability of the family in marriage should be preserved, and social habits and customs should be adjusted to this end.

There is overwhelming evidence that irregular sex relations, outside marriage lead to physical, mental and social harm."

अर्थात् "हमारी यह सम्मति है कि मानव-जाति और व्यक्ति के हित के लिए यह आवश्यक है कि पारिवारिक जीवन की दृढ़ता सुरक्षित रक्खी जाय और अपने सामाजिक एवं व्यावहारिक तौर-तरीक़े और नियम इस प्रकार व्यवस्थित किये जायँ कि इस उद्देश्य की पूर्ति हो सके।

इस बात के बहुसंख्यक उदाहरण मौजूद हैं कि वैवाहिक जीवन के बाहर जाकर अनियमित व्यभिचार करने वालों को शारीरिक, मानसिक और सामाजिक हानियाँ उठानी पड़ती हैं।"*

शिक्षित भारतीय स्त्री और पुरुष, दोनों ही उपर्युक्त पंक्तियों पर दृष्टिपात करें। और फिर संसार की सामाजिक अवस्था पर विचार करके देखें कि विवाह में पारिवारिक जीवन की दृढ़ता और पवित्रता कहाँ सुरक्षित है। आज इन गिरे दिनों में भी जैसा सुन्दर, शुद्ध घरेलू और पारिवारिक जीवन भारत में मिलेगा, वैसा जीवन शायद ही और कहीं देखने को मिले। परन्तु यदि स्त्रियों में जागृति के साथ-साथ यही शिक्षा बढ़ती गई तो तलाक़ की ज़रूरत रोज़-रोज़ बढ़ती जायगी, और साथ ही भारत की पारवारिक जीवन की दृढ़ता और पवित्रता का अंत होता जायगा। इसके अतिरिक्त, तलाक़ की बढ़ती

---

*Indian Red Cross Journal

हुई ज़रूरत के कारण देश के युवक और युवतियाँ दोनों ही को शारीरिक, मानसिक और सामाजिक हानियाँ कितनी उठानी पड़ेंगी, इसकी आज कल्पना तक नहीं की जा सकती। आज पश्चिम के विचारक विवाह में पारिवारिक जीवन की दृढ़ता को सुरक्षित रखने के क़ायल होते जा रहे हैं और हमारे देश के विद्वान् तथा समझदार विचारक लोग अपने समाज के लिए तलाक़-प्रथा का प्रचलन करने की आवश्यकता अनुभव करते हैं। समय की विचित्र गति इसे ही कहते हैं।

हम भारतीय स्त्रियों को कूप-मण्डूक बनाये रखने के क़ायल नहीं हैं। हम चाहते हैं कि वे पढ़ें-लिखें और ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करके देश के राजनीतिक और सामाजिक कामों में भाग लें। किन्तु शिक्षा प्राप्त करके वे अपनी पारिवारिक और घर-गृहस्थी की ज़िम्मेदारियों को आफ़त न समझें, और नैतिक दुर्बलता का शिकार होकर वे स्वयं वही ग़लती न करने लगें, जो आज तलाक़ की बढ़ती हुई ज़रूरत को पूरा करने की सनक में योरप और अमेरिका की लड़कियाँ करती हैं। स्त्री और पुरुष दोनों ही का जीवन सफलता-पूर्वक बीत सकता है, केवल पारस्परिक सहयोग, प्रेम और सद्भावना के बल पर; लड़ाई-झगड़ा या तलाक़-जैसी प्रथा का प्रचलन करने से नहीं। स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध की समस्या पर प्रकाश डालते हुए बड़ोदा की श्रीमती महारानी लिखती हैं—

"What is required is not antagonism, but co-operation between the sexes; woman needs the guidance of man to enable her to achieve the highest of which she is capable, as man needs woman's help and sympathy to aid him on his path through life. Feminine individuality is essentially distinct from the masculine The characteristic features of both are deeply rooted, and any effort to coerce them would probably mean not evolution but revolution.

The great organic distinctions between man and woman will always tend to produce different characteristics in each. Such differences should be fostered and not checked, that development may proceed on natural lines, following the guidance of those fundamental dissimilarities which through long ages have been the distinguishing marks of the sexes."*

अर्थात् स्त्री और पुरुष के बीच विरोध की नहीं, बल्कि सहयोग की ज़रूरत है। स्त्री को ज़रूरत है कि पुरुष उसका पथ-प्रदर्शन करे, जिससे वह अपने आपको समर्थ बना सके—उस उच्च उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, जिसके वह योग्य है। इसी तरह पुरुष को स्त्री की सहायता और सहानुभूति की ज़रूरत है, जिससे उसे जीवन-पथ पर अग्रसर होने में सहारा मिले। स्त्री का व्यक्तित्व पुरुष के व्यक्तित्व से मुख्यतया बिलकुल अलग है। दोनों की विभिन्न विशेषताएँ बहुत गहरी या स्थायी हैं, और उनमें झगड़ा कराने के किसी भी प्रयत्न का अर्थ सम्भवतः क्रान्ति होगा, विकास नहीं। पुरुष और स्त्री की इन्द्रिय-सम्बन्धी बड़ी विभिन्नताएँ सदा प्रत्येक में विभिन्न विशेषताएँ उत्पन्न करेंगी। ऐसी विभिन्नताओं की अभिवृद्धि होनी चाहिए, नियंत्रण नहीं। वह विकास स्वाभाविक तौर पर प्रगतिशील होगा उन सैद्धान्तिक विभिन्नताओं के निर्देश पर चलकर, जो बड़े युगों से स्त्री और पुरुष का विशेष चिह्न रहा है।

बड़ोदा की महारानी साहबा का अभिप्राय स्पष्ट है। वह स्त्री-पुरुष दोनों की स्वाभाविक विभिन्न विशेषताओं में अभिवृद्धि करते हुए, समाज के कल्याण के लिए दोनों में सहयोग चाहती हैं, झगड़ा नहीं। वह भारतीय समाज के घरेलू और पारिवारिक जीवन का स्वाभाविक विकास चाहती हैं, स्त्री-पुरुष के द्वन्द्व-युद्ध द्वारा उत्पन्न हुई घरेलू क्रान्ति की लपटों में उसका विनाश नहीं। वह चाहती हैं कि स्वाभाविक तौर पर देश के पुरुषों में पुरुषत्व और नारियों

---

*In "The Position of Women in Indian Life."

में नारीत्व की भावना अपने यथार्थ रूप में मूर्तिमती होकर फले-फूले और नारीत्व और पुरुषत्व के स्वाभाविक सम्मिलन से हमारे समाज का कल्याण हो।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि स्त्री और पुरुष, दोनों ही अटूट प्रेम और सहानुभूति के बल पर पारस्परिक सहयोग ही से अपनी जीवन-नौका वहन कर सकते हैं, अथवा अपना जीवन सफलता-पूर्वक बिता सकते हैं। स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध स्वयं प्रकृति ने ऐसा अटूट और स्थायी बना दिया है, जिससे एक के बिना दूसरे का जीवन बिलकुल निस्सार हो जाता है।

हमारा अनुरोध है कि देश के शिक्षित तरुण और युवतियाँ, दोनों ही पति-पत्नी के भारतीय आदर्श को उसके यथार्थ रूप में देखें, और संसार के विभिन्न समाजों के पारिवारिक आदर्श से उसकी तुलना करें, फिर समझ-सोचकर 'तलाक़ की रोज़-रोज़ बढ़ती हुई ज़रूरत' के सम्बन्ध में अपने विचार स्थिर करें। हमारे घरेलू और पारिवारिक जीवन की पवित्रता और दृढ़ता स्त्री और पुरुष दोनों के पारस्परिक सहयोग, कर्त्तव्य प्रेम और सहानुभूति के बल पर ही सुरक्षित रह सकती है, पश्चिम की तरह ठेका या साझेदारी की भावना पर नहीं। स्त्री और पुरुष दोनों ही की पवित्रता, सदाचार तथा कर्त्तव्य-परायणता के बल पर फूले-फले और पल्लवित परिवारों के सहयोग से ठीक दिशा में भारतीय समाज का निर्माण हो सकेगा। वह समाज, जिसकी आधार-शिला उसके करोड़ों स्त्री-पुरुषों के विशुद्ध चरित्र, प्रेम, सेवा, त्याग, कर्त्तव्य आदि सद्गुणों के बल पर रक्खी जायगी, स्थायी, शक्तिशाली और आदर्श समाज होगा, नैतिक दिवालिया, दुर्बल और क्षणभंगुर नहीं। वह आदर्श भारतीय समाज युगानुयुग तक संसार के गिरे हुए लोगों को ऊँचा उठाने के लिए प्रकाशस्तम्भ का काम देगा। इन सब बातों को दृष्टि-पथ में रखते हुए आज इस देश के शिक्षित स्त्री-पुरुषों के सामने एक प्रश्न है—वे अपने घरों और परिवारों में, आधुनिक शिक्षा और जागृति के विस्तार के साथ ही रोज़-रोज़ बढ़ती जानेवाली तलाक़ की ज़रूरत को पूरा करके परस्पर द्वन्द्वयुद्ध की ज्वाला जगावेंगे, या पारस्परिक सहयोग, प्रेम, सहानुभूति, कर्त्तव्य-पालन, पवित्रता आदि दुर्लभ मानवीय सद्गुणों की अमृत-वर्षा करेंगे? वे नये सिरे से

अपने समाज का निर्माण अनीति, व्यभिचार, कामुकता, स्वार्थ, लम्पटता आदि दुर्गुणों से युक्त ऐसे स्त्री-पुरुषों से करना चाहते हैं, जो नैतिक दृष्टि से बिलकुल दिवालिये हों, या चरित्रवान्, शूरवीर, आत्म-त्यागी, कर्मनिष्ठ और कर्त्तव्य-शील व्यक्तियों से ? वे अपने घर और परिवार में पति और पत्नी के बीच रात-दिन की कलह और अधिकार की सत्ता जमी हुई देखना चाहते हैं, या पारस्परिक कर्त्तव्य, प्रेम, सहानुभूति और सद्भावना की ?

५—गया-गाथा

गया-नगरी

गया नगर पटना (प्राचीन पाटलिपुत्र) के दक्षिण में बसा हुआ है । सन् १७६५ ई० में जब समस्त बिहार प्रान्त अंग्रेजों के अधिकार में आ गया तब महाराज सितावराय इस ज़िले का प्रबन्ध करते थे । पहले इस ज़िले का नाम विहार था । सन् १८६५ ई० में विहार और पटना एक कर दिया गया । तभी से इस ज़िले का नाम गया पड़ गया है । गया का दक्षिणी भाग रामगढ़ बोला जाता है । गया में ६८ पवित्र तीर्थ-स्थान हैं । गया के नामोत्पत्ति के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत में लिखा है कि—त्रेता युग में गय नाम का एक राजा यहाँ पर राज्य करता था; उसके नाम पर ही इसका नाम गया पड़ गया है । परन्तु वायु पुराण में लिखा है कि गयासुर की प्रार्थना के अनुसार ही भगवान् विष्णु ने दस मील की दूरी तक इस क्षेत्र का नाम गया रखा था । इस कथा का संक्षिप्त वर्णन आगे दिया जायगा ।

गया शहर पहाड़ के ऊपर बसा है । ब्रह्मयोनि पर्वत के होने से गया के चारों ओर का दृश्य बड़ा मनोहर हो गया है । इस पहाड़ की ऊँचाई चार सौ फ़ीट है । वर्षा काल में जिस दिन बादल नहीं होते उस दिन सूर्य्य की किरणों में रामशिला, प्रेतशिला आदि छोटे छोटे पर्वत तथा बालू से ढकी हुई फल्गु नदी का दृश्य बहुत ही सुन्दर मालूम पड़ता है । गया ज़िले की नदियों में सोन,

फल्गु और पुनपुन नदी विख्यात हैं। सोन नदी मध्यभारत से निकली है। यह नदी गया ज़िले के पश्चिम में बहती है। फल्गु नदी हज़ारीबाग़ के पहाड़ से निकल कर गया शहर में बहती हुई मुकामा के पास गङ्गा में मिलती है। प्रातः स्मरणीया महारानी अहिल्याबाई ने यात्रियों के स्नान और तर्पणादि के लिए इस नदी के किनारे पर अनेक घाट बनवा दिये हैं। प्रसिद्ध विष्णु-पद-मन्दिर और गयालियों के घर इसी के किनारे बने हुए हैं। वर्षा ऋतु में समय समय पर इन नदियों में बाढ़ आती रहती है। इससे गया-निवासियों को भारी क्षति उठानी पड़ती है। जब वर्षा होती है, तब किनारे पर के सब स्थान जलमय हो जाते हैं। सन् १८७७ ई० में सर विलियम हण्टर ने लिखा था कि लगभग ३७ वर्ष पहले इन नदियों में जल की एक स्थायी बाढ़ आई थी।

गया का जल-वायु शुष्क और साधारणतः स्वास्थ्य-प्रद है। गर्मियों में यहाँ की हवा बहुत ही गर्म रहती है। १८ जून सन् १८७८ ई० को गर्मी ११६.२ डिग्री तक पहुँच गई थी। शीत काल में यहाँ का जल-वायु बहुत ही अच्छा रहता है। वर्षा ऋतु में ४२.६४ इञ्च तक पानी बरस जाता है।

पाश्चात्य इतिहासज्ञों का मत है कि प्राचीन काल में गया भीलों का निवास-स्थान था। पहाड़ी जगहों में अब भी उनके वंशधर पाये जाते हैं। तिर्हुत (सीता देवी का जन्म-स्थान तिरयुक्ति) तथा अन्य स्थानों में जब अयोध्या के सूर्य्यवंशी राजाओं का राज्य था तब भी गया और पटना में असभ्य जङ्गली लोग रहते थे।

राजगृह यहाँ की प्राचीन राजधानी थी। यहाँ का राजा जरासन्ध था। जरासन्ध के समय में यहाँ पर चारों ओर जङ्गल था। इन स्थानों में अब भी प्राचीन समय के ऐसे स्तम्भ भग्नावस्था में देखे जाते हैं, जो भारत के प्राचीन कला-कौशल का दिग्दर्शन कराते हैं। इस समय एक प्राचीन दुर्ग के खँडहर मात्र पाये जाते हैं। यह नगर चारों ओर पहाड़ी टीलों से घिरा हुआ है।

यहाँ के राजा बिम्बसार की मृत्यु के कुछ ही दिनों बाद यहाँ बुद्धदेव और महावीर स्वामी ने निर्वाणपद प्राप्त किया था। इस राज-वंश के अन्तिम महा-

राज महानन्द ने एक शूद्र जाति की स्त्री से विवाह किया। उससे उसके नन्द महापद्म नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यही लड़का नन्द वंश की जड़ जमाने वाला था।

ईसा की पाँचवी शताब्दी में जब सुप्रसिद्ध चीनी परिव्राजक फ़ाहियान भारतवर्ष की यात्रा करने को आया था तब गया नगरी जन-शून्य मरुभूमि थी। तब बोधि गया में बौद्ध धर्म का केन्द्र था। तब यहाँ सिंहल, ब्रह्मा, चीन और जापान से भिक्षु लोग बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने के लिए आया करते थे। गया तीर्थ-स्थान के प्राचीनत्व के सम्बन्ध में किसी पुराण में इस श्लोक का उल्लेख किया गया है :—

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका।
पुरी, द्वारावती चैव सप्तैते मोक्ष-दायिका॥

गया शहर, पुराना गया और साहबगञ्ज दो भागों में विभक्त है। पुराने गया में देव मन्दिर और गयावासियों के रहने के मकान हैं। साहबगञ्ज में व्यापारिक मण्डी तथा बाज़ार है। साहबगञ्ज में ही यहाँ के हाकिम लोग रहते हैं। अठारहवीं शताब्दी में स्थानीय कलक्टर मि० ला (Law) ने साहबगञ्ज को बसाया था। पुराने गया और रामशिला के बीच में, नदी के किनारे के भाग को, साहबगञ्ज कहते हैं।

गया और गयासुर

हम पहले कह चुके हैं कि वायु पुराण के अनुसार विष्णु भगवान् ने गयासुर की प्रार्थना पर इस क्षेत्र का नाम गया रखा। यह कथा इस प्रकार है:—

असुरों में त्रिपुरासुर नाम का एक राजा था। वह बड़ा ही प्रतापी और बलशाली था। अपने स्वभाववश उसने देवता-गणों को तङ्ग करना शुरू किया। वे जाकर महादेव जी के पास पुकारे। उनकी प्रार्थना पर देव-देव महादेव जी ने उससे लड़कर उसे मार डाला। तभी से उनका नाम त्रिपुरारि पड़ा।

शुक दैत्य की कन्या प्रभावती त्रिपुरासुर की स्त्री थी। वह बड़ी धर्म परा-यणा और पतिव्रता थी। प्रभावती सदा अपने स्वामी के अन्याय-पूर्ण कामों का विरोध करती थीं। त्रिपुरासुर की मृत्यु के कुछ समय पहले स्वर्ग-लोक से जब नारद ऋषि पधारे तब उसने नारद ऋषि से अपनी-मङ्गल-कामना की कुछ बातें पूछीं। ऋषि ने प्रभावती की प्रार्थना स्वीकार कर त्रिपुर से कहा कि, "तुम्हारी स्त्री के गर्भ से एक पुत्र होगा; वह महा प्रतापी और त्रिभुवन का राजा होगा तथा एक क्षेत्र विशेष की स्थापना करेगा।"

यथासमय प्रभावती के गर्भ से गयासुर का जन्म हुआ। वह बहुत ही बली और विशाल-काय था। गयासुर जब पाँच वर्ष का हुआ तब उसकी माँ उसको पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजने लगी। उस ज़माने में धनी और दरिद्र सभी गुरू के घर विद्या पढ़ते थे। राजकुमार गयासुर भी दैत्यों के गुरू शुक्राचार्य्य के यहाँ पढ़ने गया। शुक्राचार्य्य के यहाँ ही गयासुर ने वेद, वेदाङ्ग आदि धर्म-ग्रन्थों की शिक्षा के साथ साथ युद्ध-विद्या भी सीखी।

एक दिन पाठशाला के सहपाठियों ने पितृहीन कह कर गयासुर का कुछ अपमान किया। वह दुखित होकर रोते रोते घर आया और माँ से अपने वंश और पिता का परिचय जानना चाहा। प्रभावती ने विस्तृत विवरण सहित त्रिपु-रासुर के मारे जाने का हाल तथा देवताओं और राक्षसों के पुराने बैर की कथा कही। माँ के मुख से, अपने पिता की मृत्यु का हाल सुनकर, पुराने बैर का प्रतिशोध करने का दृढ़ सङ्कल्प करके, गयासुर गुरू के घर पहुँचा। गुरू से अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग सीखकर वह लौट आया और आते ही माँ से देवताओं से युद्ध करने की आज्ञा माँगी। माँ ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "वत्स! तुम युद्ध में विजय प्राप्त करके संसार में वीर-श्रेष्ठ कहलाओगे; माँ रण-चण्डी तुम्हारी सहायता करेगी।" सुमेरु पर्वत के शिखर पर इन्द्रादि देवताओं के साथ गयासुर का घमासान युद्ध हुआ। युद्ध में जय-लाभ की कुछ भी आशा न देख कर देवता-गण फिर भगवान् महादेव की शरण में गये। देवताओं का परित्राण करने के लिए महादेव राक्षसों से युद्ध करने लगे।

पितृ-शत्रु शङ्कर की संहार-मूर्त्ति देख कर गयासुर किञ्चित् भी भयभीत न हुआ। वह अत्यन्त क्रोधित होकर शङ्कर की सेना का संहार करने लगा। उसने अपने अतुलनीय पराक्रम से शत्रु की सेना के हज़ारों योद्धाओं के हृत्पिण्ड से रक्त-धारा बहाई। अपनी समस्त सैन्य हताहत देख कर महादेव जी त्रिशूल हाथ में लेकर गयासुर को मारने के लिए दौड़े। उस दिन त्रिशूल का तेज भी सहसा निष्प्रभ हो गया। त्रिपुरारि युद्ध में बुरी तरह पराजित हुए—उनका दर्प चूर्ण हो गया। इस समय गयासुर त्रिभुवन का राजा था। देवगण राज्य-हीन होकर इधर-उधर रोते फिरते थे।

एक दिन देवगण रोते रोते भगवान विष्णु के पास पहुँचे और उनको गयासुर के प्रकोप और उसके द्वारा की गई अपनी दुर्गति का सम्पूर्णवृत्तान्त सुना कर उनसे अभय-दान माँगा। भगवान् विष्णु ने देवताओं को आश्वासन देकर विदा किया और स्वयं गयासुर के सम्मुख आविर्भूत होकर कहा, "गया-सुर! तुमने देवताओं को युद्ध में पराजित कर उनका राज्य छीन लिया है; या तो उनका राज्य फेर दो नहीं तो मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा।" यह सुन कर गयासुर पागलों की तरह तर्ज्जन-गर्ज्जन करने लगा। वह भीषण चीत्कार करते हुए विष्णु से बोला, "भगवन्! आप जानते हैं कि महादेव ने कपटयुद्ध से मेरे पिता त्रिपुरासुर का संहार किया था। देवताओं का क्या यही धर्म था? पितृ-वैरी देवताओं का राज्य मैं कदापि नहीं लौटाऊँगा। यदि आपकी युद्ध करने की इच्छा है तो कीजिए, मैं भयभीत नहीं हूँ।" भगवान् विष्णु गयासुर की पितृ-भक्ति और वीरता देख कर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उससे युद्ध करने को कहा।

देवासुर-संग्राम आरम्भ होगया। रण-भेरी के नाद से समस्त भूमण्डल कम्पित हो उठा। अनेक अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर दोनों दलों में असंख्य योद्धा लड़ने लगे। इस प्रकार बराबर सौ वर्ष तक युद्ध होता रहा। विष्णु और गयासुर में से कोई भी नहीं हारा। इसके पश्चात् देखते देखते दशों दिशाओं में चकाचौंध करती हुई विद्युत के समान एक देवी प्रकट हुई। उसने गयासुर

की बुद्धि पलट दी । गयासुर भगवान् विष्णु की इच्छानुसार कार्य्य करने के लिए सहमत हो गया । उसने प्रतिज्ञा की कि वह भविष्य में किसी भी मनुष्य और देवता की हिंसा न करेगा तथा स्वयं भगवान् के हाथ से पत्थर की शिला बन कर रहेगा । भगवान् विष्णु के सङ्केत से धर्मराज ने गयासुर के मस्तक पर एक धर्म-शिला स्थापित की । विष्णु ने गयासुर से वरदान माँगने को कहा । गयासुर ने भगवान् को साष्टांग प्रणाम करके यह वरदान माँगा कि, "जिस क्षेत्र में मेरी मृत्यु हो अथवा जहाँ पर मैं शिला के रूप में पड़ा होऊँ, उस शिला पर भगवान् के चरण-कमलों की स्थापना हो; वह क्षेत्र मेरे नाम पर गया-क्षेत्र के नाम से प्रख्यात् हो; मेरे शिलामय शरीर पर जो कोई तर्पण और पिण्ड-दान करे उसके पितृगण सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग में वास करें; जिस दिन पिण्ड-दान से तृप्त होकर पितृगण मुक्त न हों, उसी दिन संसार का नाश हो ।"

वरदान समाप्त होते ही विष्णु भगवान् ने गयासुर के मस्तक पर रखी हुई शिला पर अपने चरण कमलों की स्थापना की । गयासुर का समस्त शरीर घूमने लगा और उसकी आँखें फट गईं । देखते-देखते क्षण मात्र में उसकी देह शिला के रूप में परिणत हो गई ।

राजगृह

गया ज़िला उत्तरी और दक्षिणी भाग—इन दो भागों में बँटा हुआ है । पटना सहित उत्तरी भाग मगध कहलाता है । यह भाग बहुत ही उपजाऊ है । सिंचाई के लिए जल की यहाँ ख़ूब सुविधा रहती है । दक्षिणी भाग रामगढ़ के नाम से प्रसिद्ध है । यह भाग जंगलों से घिरा हुआ है । मगध का भाग बौद्ध देश है । प्राचीन-काल में यह स्थान बौद्ध-धर्म का लीला-क्षेत्र था । मगध की राजधानी राजगृह में है । बौद्ध लोग राजगढ़ को पवित्र तीर्थ-स्थान मानते हैं । भगवान् बुद्ध देव अधिक समय तक यहाँ निवास करते रहे थे । यहाँ का नालन्द विश्वविद्यालय अत्यन्त प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था । इसके पास गृध्रकूट

पर्वत पर गौतम ने सुरङ्गम सूत्र का अभ्यास किया था। यह स्थान वैहार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक—इन पाँच शैलों से घिरा हुआ है। वायु पुराण में इन पाँचों पर्वतों के दूसरे नाम लिखे हुए हैं; जैसे वैभार, विपुल, राजकूट, गिरि व्रज और रत्नाचल। कहा जाता है कि इस स्थान में जरासन्ध का क़िला था। बौद्ध-युग में यही स्थान बौद्ध देव का लीला-क्षेत्र हो गया। विहार में मुसलमानों के शासन-काल में यहाँ पर मक़दूम सरफ़ुद्दीन रहा करता था। इस पाँच पर्वतों से घिरी हुई चक्राकार घाटी के नीचे सरस्वती नामक नदी बहती है। यहाँ पर कई एक गर्म पानी के झरने और कुण्ड भी हैं। यह बात ह्वैनसियाङ्ग ने भी अपनी यात्रा के वर्णन में लिखी है। इस समय भी विपुल गिरि और वैभार गिरि के नीचे तपोवन में गर्म पानी के झरने देखे जाते हैं। रोगी मनुष्य इन गर्म पानी के कुण्डों में स्नान करके आरोग्य-लाभ करते हैं। सन् १८१७ ई० में डा० बूकानन ने निम्नलिखित कुण्डों की गर्मी का इस प्रकार विवरण लिखा है :—

सूर्य्य कुण्ड	११६ डिग्री
सीता कुण्ड	१०० ,,
ब्रह्म कुण्ड	१०२ ,,
चर्म कुण्ड	११२ ,,

पर्वत के ऊपरी भाग में रहकर बुद्ध देव ने अधिक समय तक अपने अमृतमय उपदेशों का प्रचार किया था। इतिहास देखने से पता चलता है कि मगध के अन्तर्गत राजगृह में भगवान् बुद्ध देव ने यहाँ के राजा बिम्बसार को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था।

विष्णुपद-मन्दिर

गयासुर की प्रार्थनानुसार विष्णु भगवान् ने उसकी शिला पर अपने चरण-चिह्न अंकित किये। इसी से यहाँ विष्णुपद-मन्दिर की स्थापना हुई है

इसमें अंकित चरण चिह्नों की पूजा करने के लिए लाखों धर्म-प्राण हिन्दू गया तीर्थ में आते हैं। यह मन्दिर गया तीर्थ का केन्द्र स्वरूप है। अठारहवीं शताब्दी में प्रातः स्मरणीया महारानी अहिल्याबाई ने इस मन्दिर को बनवाया था।

यह मन्दिर दोतल्ला है। इसका क्षेत्रफल (घेरा) ५८ वर्ग फ़ीट है। एक तरह के काले पत्थर ग्रेनाइट (Granite) से यह मन्दिर आठ खम्भों के ऊपर बनाया गया है। प्रत्येक खम्भ चार खम्भों से मिल कर बना है। मन्दिर का ऊपरी भाग गुम्बज़ाकार है, जो देखने में बहुत सुन्दर मालूम होता है। मन्दिर के इसी भाग में भगवान् विष्णु के चरण-चिह्न अंकित हैं। उसके ऊपर पिरामिड के आकार का आठ कोनों वाला स्तूप सुशोभित है। इसका अग्र भाग स्वर्ण-निर्मित है, जिसमें ध्वजा फहराती रहती है। मन्दिर का दरवाज़ा चाँदी से जड़ा हुआ है। इस दरवाज़े में दो घण्टे लटकते हैं। इनमें से एक घण्टा नैपाल के राज-मंत्री ने बनवाया था और एक यात्री-कर के वसूल करने वाले मि० काले क्लेर ग्लेण्डर साहब ने उपहार में दिया था। दूसरे घण्टे के ऊपर लिखा है, 'मि० फ्रान्सिस ग्लेण्डर का दान, गया, १५ जनवरी सन् १७९० ई०।' मन्दिर के सामने के भाग में एक सभा-मण्डप है। कलकत्ते के राजा राधाकान्त देव ने इसको बनवाया था।

मन्दिर के भीतरी भाग में लगभग ७८ वर्ग फ़ीट आकार वाली पत्थर की चौकी के ऊपर चाँदी से जड़े हुए सोलह कोनों के कुण्ड के बीच में विष्णु भगवान् के चरण-कमल अङ्कित हैं। हिन्दुओं का विश्वास है कि यहाँ पर पिण्ड-दान करने से मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा को सद्गति प्राप्त होती है।

अक्षय बट

विष्णु-पद-मन्दिर से प्रायः आधी मील दूर दक्षिण-पश्चिम में ब्रह्मयोनि पर्वत के निम्न भाग में विख्यात अक्षय बट है। साक्षी देने के समय सत्य कथा कह कर इस वृक्ष ने सीता देवी से आशीर्वाद प्राप्त किया था। गया-कार्य्य

समाप्त करके यात्री-गण इस वृक्ष तले 'गयाली ठाकुर' के समीप सुफल ग्रहण करने को जाते हैं। यहीं पर एक कृष्ण-द्वारिका मन्दिर है। गया-माहात्म्य में इसकी मूर्त्ति का कोई उल्लेख नहीं है। इस मन्दिर के समीप एक मकान में गयाली एकत्रित होते हैं। मन्दिर के आँगन में अनेक देव-मूर्त्तियाँ टूटी-फूटी पड़ी हुई हैं।

ब्रह्मयोनि

गया शहर के दक्षिण में एक पर्वत है। इस पर्वत के ऊपर एक छोटे से मन्दिर में, सावित्री, गायत्री और सरस्वती आदि ब्रह्मशक्ति की मूर्त्तियाँ हैं। सम्भवतः ऐसा अनुमान किया जाता है कि सन् १६३३ ई० में इन तीन मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा हुई होगी। इस स्थान पर 'ब्रह्मयोनि' नामक एक गुफ़ा है। हिन्दुओं का विश्वास है कि एक बार इस गुफ़ा में प्रवेश कर आने से पुनर्जन्म नहीं होता। समतल भूमि होने से इस पर्वत की ऊँचाई ४५० फ़ीट है। पर्वत के दक्षिण-पूर्व के कोने में यात्रियों की सुविधा के लिए महाराष्ट्र के देव राव भाऊ साहब ने एक सीढ़ी बनवा दी है। कहते हैं कि इस पर्वत के एक स्थान पर रह कर ब्रह्मा ने गो-दान किया था। पर्वत में आज तक असंख्य गो-पद-चिह्न अंकित देख पड़ते हैं। दूसरे स्थान में तृतीय पाण्डव भीम ने पिण्ड-दान किया था। उसकी जंघा का चिह्न पण्डे लोग आजकल भी दिखाते हैं।

राम शिला

गया शहर के उत्तर में यह पर्वत है। बनवास के समय श्री रामचन्द्र जी ने सीता देवी के साथ इस पर्वत से निकलने वाली नदी में स्नान किया था। इसी कारण इसका नाम रामशिला पड़ गया है। इसकी ऊँचाई ३७२ फ़ीट है। इसी स्थान पर पातालेश्वर महादेव की एक मूर्त्ति स्थापित है। मन्दिर का ऊपरी भाग आधुनिक है; किन्तु नीचे का भाग सन् १०१४ ई० का बना हुआ है। टिकारी के राजा रण बहादुर ने इस पर्वत पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनवा दी हैं।

प्रेत शिला

प्रेत-शिला की ऊँचाई ५४० फ़ीट है। यह गया शहर से उत्तर-पश्चिम की ओर पाँच मील की दूरी पर है। इस स्थान पर एक मन्दिर है, जो धर्मराज और यम के नाम पर ही छोड़ दिया गया है। मन्दिर के भीतर एक पत्थर पर पिण्ड-दान करना पड़ता है। कलकत्ता-वासी हिन्दुओं ने सन् १७७८ ई० में इस पर्वत पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनवा दी हैं। पहाड़ के नीचे सती, निग्र और सुख कुण्ड—ये तीन कुण्ड हैं तथा ऊपर यम-मन्दिर के निकट राम कुण्ड है। कहा जाता है कि श्री रामचन्द्र जी ने इस कुण्ड में भी स्नान किया था। क्वार के महीने में यहाँ पर बहुत से यात्री आते हैं। यात्री गण दक्षिण की ओर मुख करके प्रेत-शिला पर श्राद्ध करते हैं।

अभिशाप

प्रेत-शिला के सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है। कहते हैं कि पुराने ज़माने में अपनी पतिव्रता धर्म-पत्नी धर्मव्रता के साथ यहाँ मरीचि ऋषि रहते थे। एक दिन भोजन के पश्चात् जब मुनि सो रहे थे, धर्मव्रता उनके चरण दाब रही थी। इसी समय वहाँ प्रजापति ब्रह्मा आये। अपने श्वसुर की यथोचित अभ्यर्थना करने के लिए धर्मव्रता अपने पति के चरणों का दाबना छोड़ कर उनके पास चली गई। जब मुनि की निद्रा भंग हुई तब अपनी धर्म-पत्नी को अपने पास न पाकर दुष्ट शंका और क्रोध से वे आपे से बाहर हो गये और उन्होंने उसे यह शाप दे डाला कि, "तू शिला रूप में परिणत हो जा!" बिना अपराध के शाप देने के कारण धर्मव्रता को भी मुनि पर क्रोध आ गया और उसने उन्हें यह शाप दे डाला कि महेश्वर आपको शाप देंगे। इसके बाद उसने घोर तपस्या करके विष्णु भगवान् से यह वरदान प्राप्त कर लिया कि, "मेरा शरीर जिस शिला के रूप में परिणत हो वह शिला सब शिलाओं से पवित्र हो; उस पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश के चरण-कमलों की स्थापना हो और जो लोग इस शिला पर पिण्ड-दान करें वे पितृगण सहित

ब्रह्मलोक में वास करें।" भगवान् विष्णु ने उसकी प्रार्थना पूरी की। उन्होंने गयासुर के सिर पर जिस शिला का प्रहार किया वह धर्मव्रता के शरीर की शिला थी। उसी पर उन्होंने अपने चरणों की स्थापना की।

बुद्ध गया

गया से सात मील दक्षिण की ओर उरुवेल ग्राम में बौद्ध गया का एक बहुत पुराना स्तूप है। लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहले इस पुण्य-स्थान में ही भगवान् शाक्यसिंह ने एक वृक्ष के नीचे बुद्धत्व लाभ किया था। आज भी गया के चारों ओर फैले हुए बुद्ध गया, कुक्कुटपाद, राजगृह और नालन्द आदि स्थान महातीर्थ रूप में परिणत होकर समस्त मानव-जाति के तृतीयांश द्वारा पूजे जाते हैं। बोधिगया ग्राम के बीच में एक पहाड़ के दक्षिणी ढाल पर यह प्रसिद्ध मन्दिर बना हुआ है। इस स्थान के बोधि वृक्ष के नीचे शाक्यसिंह सम्बुद्ध हुए थे। चीन देश के परिव्राजक हैनसियाङ्ग ने अपनी यात्रा का भ्रमण-वृतान्त विस्तृत रूप से लिखा है। उसके मत से तृतीय शताब्दी में सबसे पहले महाराज अशोक ने अपने मंत्री की सहायता से इस स्थान में विहार की प्रतिष्ठा के लिए एक लक्ष्य स्वर्णमुद्रा व्यय करके यह अद्भुत मन्दिर बनवाया था। मन्दिर की ऊँचाई १६० फ़ीट तथा घेरे की चौड़ाई ६० फ़ीट है। मन्दिर में एक विशेष प्रकार की ध्यानी बुद्ध की मूर्त्ति स्थापित है।

बोधिगया का वर्तमान मन्दिर कब बनाया गया, इसका कुछ ठीक-ठीक पता नहीं चलता। कनिङ्गहम साहब के मत से पहली शताब्दी में कुशानराज हुविस्केर के समय में यह बनी थी और चौथी शताब्दी में सम्राट् समुद्रगुप्त के आदेश से इसका संस्कार हुआ था। फ़र्ग्यूसन आदि पुरातत्ववेत्ता इसकी बनावट से इसका निर्माण-काल छठवीं शताब्दी में अनुमान करते हैं; किन्तु इसका ठीक-ठीक निर्णय करना दुस्साध्य है। मुख्य मन्दिर ईंटों का बना हुआ है। लगभग ५० फ़ीट विस्तृत वेदी के ऊपर यह मन्दिर स्थापित है। किसी समय में यह तीन तल्ला था। सन् १८७६ ई० में ब्रह्म देश के राजा

मिण्डुनमिन ने मन्दिर की मरम्मत के लिए अपने तीन कर्मचारी भेजे थे किन्तु वे मरम्मत करने में पूर्णतः कृतकार्य न हुए। इस कारण बाध्य होकर उन्हें गवर्नमेण्ट की सहायता लेनी पड़ी।

बंगाल गवर्नमेण्ट के प्रबन्ध से सन् १८८० ई० में मन्दिर की मरम्मत का कार्य्य आरम्भ होकर सन् १८९२ ई० में समाप्त हुआ था। मरम्मत होने के बाद गवर्नमेण्ट ने मन्दिर में एक पत्थर लगवा दिया है। उसमें यह खुदा हुआ है :—

"This ancient temple of Mahabodhi erected on the holy spot where Prince Sakyasinha became Buddha, was repaired by the British Government under the orders of Sir Ashley Eden, Lieutenant-Governor of Bengal in A. D 1880."

मन्दिर में प्रवेश करने के लिए केवल एक मार्ग है। भीतरी भाग में अन्धकार छाया रहता है। सम्मुख ही पत्थर की बनी हुई वेदी है और उस पर ध्यानी बुद्ध की एक अनुपम मूर्त्ति स्थापित है। सिंहासन पर खुदी हुई तीन छत्र-लिपि हैं। उनसे पता चलता है कि यह मूर्त्ति और सिंहासन किसी छिन्द वंशीय राजा के बनवाये हुए हैं। दोतल्ले में जाने के लिए दो सीढ़ी हैं। उसके बीच बीच, में एक एक बुद्ध की मूर्त्ति देखो जाती है। दक्षिण दिशा की बुद्ध-मूर्त्ति दशवीं शताब्दी में वीरेन्द्र भद्र ने स्थापित करवाई थी। दोतल्ला के एक मन्दिर में सिद्धार्थ-जननी माया देवी की मूर्त्ति देखी जाती है। विशाल मन्दिर के चारों ओर एक रमणीक बाग़ लग रहा है। मन्दिर के पीछे बौद्धों की आदरणीय वस्तु 'बोधिद्रुम' या 'ज्ञान वृक्ष' है। कहा जाता है कि इसी वृक्ष के नीचे भगवान् बुद्धदेव सम्बुद्ध हुए थे; इसी कारण बौद्ध लोग परम भक्ति से इस वृक्ष की पूजा करते हैं। बौद्धों से भिन्न दूसरे धर्मावलम्बियों ने इस वृक्ष को जड़ से नष्ट कर देने का प्रयत्न किया था। बौद्ध धर्म ग्रहण

करने से पूर्व सम्राट अशोक ने इस वृक्ष को बिल्कुल नष्ट कर दिया था किन्तु बौद्ध धर्म की दीक्षा के पश्चात् फिर इस वृक्ष को लगा दिया था। महाराज अशोक बड़ी श्रद्धा और अत्यन्त भक्ति से इस वृक्ष की पूजा करते थे। कहा जाता है कि वृक्ष के प्रति राजा की परम भक्ति देख कर ईर्ष्या-वश रानी तिर्य्यरक्षिता ने छिप कर वृक्ष को काट दिया था किन्तु अलौकिक शक्ति के प्रभाव से वह पुनर्जीवित हो गया। तीसरी बार छठवीं शताब्दी में राजा शशाङ्क नरेन्द्र गुप्त ने इस वृक्ष को जड़ से कटवा दिया किन्तु मगधेश्वर पूर्णवर्नमन ने फिर इसे लगवा दिया। कोई इसे काटने का प्रयास न करे—इस लिए राजा पूर्णवर्नमन ने वृक्ष के आस-पास २४ फ़ीट ऊँचा एक घेरा बनवा दिया।

बोधि वृक्ष और मुख्य मन्दिर के बीच में वज्रासन या हीरक सिंहासन है। बौद्धों का विश्वास है कि यह आसन अक्षय रहेगा—यह कभी नष्ट नहीं होगा। प्राय: दो हाथ ऊँचे चबूतरे पर यह बना हुआ है। इस चबूतरे पर एक सिंह और मनुष्य की मूर्त्ति स्थापित है। इसका ऊपरी भाग एक बृहताकार पत्थर से ढका हुआ है। यह आसन महाराज अशोक के समय में बनाया गया था। वज्रासन के बीच में एक मण्डल है। उसके चारों ओर चौकोने और तिकोने चित्र देखे जाते हैं। कहा जाता है कि योग-सिद्ध के पश्चात् महात्मा बुद्ध इस आसन पर समाधिस्थ होते थे। वज्रासन के ऊपर महात्मा बुद्ध की एक पत्थर की मूर्त्ति बनी हुई है। मुख्य मन्दिर के चारों ओर सम्राट अशोक के बनवाये हुए स्तम्भों की एक श्रेणी बनी हुई है इस श्रेणी के अधिकांश स्तम्भ आज-कल टूटी-फूटी दशा में देखे जाते हैं। अनेक लोगों की धारणा है कि ईसा से २५० वर्ष पहले यह श्रेणी बनाई गई थी। प्रत्येक स्तम्भ में, आश्चर्य-जनक कारीगरी देखी जाती है। उनमें विविध प्रकार के जीव-जन्तुओं तथा पुष्पों के चित्र अङ्कित हैं।

मन्दिर के उत्तर की ओर एक दीर्घाकार वेदी पर भगवान् बुद्ध देव के चरण-चिन्ह अङ्कित हैं। कहा जाता है कि सम्बुद्ध होने के द्वितीय सप्ताह में

महात्मा बुद्ध यहाँ पर पधारे थे। एक स्थान में एक सूर्य्य की मूर्त्ति है। उसमें देखा जाता है कि भास्कर देव रथ के ऊपर खड़े हैं; रथ को चार घोड़े खींच रहे हैं और दोनों ओर दो व्यक्ति तीर छोड़ रहे हैं। यह मन्दिर आज कल किसी हिन्दू मठाधीश के हाथ में है। स्वामी सत्यदेव ने इसी मन्दिर को बौद्धों को वापस दिलवा देने के लिए आन्दोलन किया था।

गया के पण्डे

गया के पण्डों के सम्बन्ध में गया के एक सज्जन से हमें अनेक ज्ञातव्य बातें मालुम हुई हैं। उनका कहना है कि गया के पण्डे अपने को ब्रह्मा की सन्तान बतलाते हैं। कहते हैं कि जब गयासुर के सिर पर शिला स्थापित करते समय ब्रह्मा ने अपने यज्ञ की पूर्णाहुति की तब उन्होंने चौदह गोत्रों के स्वकल्पित सपत्नीक ब्राह्मणों को उत्पन्न कर उन लोगों को प्रचुर धन दान किया और कहा कि अब आप लोग और किसी से दान न लें। लेकिन जब धर्म ने धर्मारण्य में यज्ञ किया तब उसने छल से गयापालों (गया के पण्डों) को भी दान दे दिया। परिणाम-स्वरूप ब्रह्मा ने इन लोगों से अपना दान लौटा लिया और इन्हें शाप दिया कि तुम लोग विद्या-हीन और लोभी होगे। गयापालों की स्तुति करने पर ब्रह्मा ने इन लोगों से कहा कि इसी तीर्थ द्वारा तुम लोगों को जीविका चलेगी। तभी से ये लोग गया-यात्रियों के पण्डे बन कर अपनी जीविका चला रहे हैं। एक कोस में गयासुर दानव का सिर है; उसी एक कोस के अन्दर गयापालों ने अपने मकान बनवाये। ये लोग चौदपसेंदा कहे जाते हैं क्योंकि कहा जाता है कि दो हजार वर्ष पूव इन लोगों के चौदह सौ घर थे परन्तु चीनी-यात्री ह्वैनसियाङ्ग ने अपनी यात्रा के वर्णन में लिखा है कि गया में सिर्फ़ १००० पण्डा थे। इस समय तो इनकी संख्या इतनी कम हो गई है कि इनके लिए शादी-विवाह करना भी कठिन हो गया है। इस समय इन लोगों के केवल सौ घर रह गये हैं। पिछले दिनों में विवाह की समस्या को हल करने के लिए इन लोगों की एक सभा हुई थी। उसमें यह तय किया गया कि गया-

पालों का विवाह सम्बन्ध दक्षिणी ब्राह्मणों से किया जाय परन्तु अभी तक यह प्रस्ताव कार्य रूप में परिणत नहीं हुआ। ये लोग विशेषतः माधव सम्प्रदाय को मानते हैं और महाराष्ट्र ब्राह्मणों का बनाया हुआ भोजन खाते हैं। इन लोगों का पहनावा भी महाराष्ट्रों से मिलता-जुलता है। ये लोग अतीव विलासी होते हैं। चिड़ियों का पालना ही इनका धर्म है। लाल तीतर, बटेर इत्यादि पक्षियों को लड़ाना इनका मुख्य मनोरञ्जन है। कबूतर, तूती इत्यादि को ये सदैव अपने हाथों पर बिठाये रखते हैं। इनमें से अधिकांश लोग वेश्यागामी होते हैं और अपने यहाँ वेश्याओं को रखते हैं। अच्छे गवैये और पहलवानों को आश्रय देते हैं। पढ़ने-लिखने के नाम पर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। पान खाना, इत्र-फुलेल लगाना, साथ में दस-बीस सिपाहियों और लट्ठबाज़ों को लेकर अकड़ते हुए घूमना इनके खास शौक़ हैं। दिन में दस-ग्यारह बजे सो कर उठना, दो बजे स्नान तथा चार बजे भोजन करना इनकी दिन-चर्या है। शेखी और उद्दण्डता इनमें कूट कूट कर भरी है। कुछ लोग विद्या-व्यसनी और धर्मप्रेमी भी हैं किन्तु अधिकतर अपढ़, लम्पट, पाखण्डी और अभिमानी ही हैं। शेखी और उद्दण्डता इनके ख़ास गुण हैं। गयापालों के वेश्याओं से उत्पन्न हुए लड़के, "सूरतवाला" कहे जाते हैं। ये स्वयं तो पुरोहित का काम नहीं करते परन्तु किसी गयापाल से सुफल दिलवा कर यात्रियों से धन ले लेते हैं। अधिकांश पण्डे सदा मूँछों पर ताव दिया करते हैं। सीधे बात करना तो इनके लिए असम्भव ही है। भद्रता तो इनके पास फटकने तक नहीं पाई। इनकी सभी बातें विचित्र होती हैं। जाड़े के दिनों में भी पतली मलमल का कुरता इनके शरीर को सुशोभित कर सकता है। आप इनके सिर पर कामदार ज़र की टोपी छोड़ कर और किसी तरह की टोपी नहीं पा सकते। साधारण से साधारण बात पर भी ये आपस में या दूसरों के साथ उलझने को तैयार रहते हैं। लज्जाशीलता और भद्रता का इन्होंने शायद कभी नाम भी नहीं सुना है। पिता पुत्र को दुराचार की शिक्षा देता है। गया में कृषकों की फ़सल के सदृश गयापालों की भी फ़सलें होती हैं। फ़सल शब्द से तात्पर्य उन महीनों से है जब कि यात्री यहाँ अधिकता से आते हैं। साधारणतः ये महीने फ़सल के नाम

से मशहूर हैं। बिहार में कृषकों की फ़सल के सदृश गयापालों की फ़सल भी आश्विन, पौष और चैत्र में होती है अर्थात् इन महीनों में यात्री अधिकता से आते हैं। सब से बड़ी फ़सल आश्विन पितृ-पक्ष की है। फ़सल के ज़माने में तो इनके खूब गहरे होते हैं; परन्तु फ़सल के समाप्त होते ही ये पुनः दरिद्र हो जाते हैं और क़र्ज़ पर क़र्ज़ लेने की नौबत आ जाती है।

—:o:—

६—बेलगाँव-दर्शन

कर्नाटक प्रान्त

बेलगाँव कर्नाटक प्रान्त के अन्तर्गत है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रान्त की महत्ता बहुत बढ़ी-चढ़ी है। जिन शङ्कर स्वामी ने अल्पावस्था में ही अपनी प्रखर प्रतिभा और प्रगाढ़ पाण्डित्य के बल पर नास्तिकता का वृक्ष समूल उखाड़ कर समस्त देश में भगवा झण्डा फहराते हुए वैदिक-धर्म की स्थापना की थी, वे इसी प्रान्त के नर-रत्न थे। भक्ति-मार्ग के प्रचारक तथा विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य्य की जन्मभूमि होने का इसी प्रान्त को गर्व है। अपने आचरण और उपदेश से पतितों का उद्धार करनेवाले द्वैतमत के प्रचारक श्री माध्वाचार्य, जिनके मत का कर्नाटक, महाराष्ट्र और मदरास के एक बड़े भाग पर आज भी अच्छा प्रभाव है, इसी भूमि में पले थे। वेद-भाष्य के रचयिता श्री सायणाचार्य्य इसी भूमि की गोद में खेले थे। इनके अतिरिक्त वैराग्य और वेदान्त आदि जटिल विषयों पर विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों के रचयिता तथा मानवजीवन में नव स्फूर्ति संचार करनेवाले और भी अनेक महापुरुष इस कर्नाटक प्रान्त में हो गये हैं। जिस बहमनी राज्य और विजय-नगर की अतीत स्मृति की गाथाएँ भारतीय इतिहास का गौरव बढ़ा रही हैं, वह इसी प्रान्त के अन्तर्गत हैं।

अंग्रेज़ों ने कर्नाटक प्रान्त के पाँच टुकड़े कर दिये हैं। एक भाग मैसूर के राज्य में, दूसरा हैदराबाद में, तीसरा मदरास प्रान्त में, चौथा बम्बई में और पाँचवाँ कुर्ग में सम्मिलित है। भाषानुसार प्रान्त-रचना की दृष्टि से अंग्रेज़ों द्वारा जिस प्रकार इस प्रान्त का विच्छेद किया गया है, उसके सामने 'बङ्ग-भङ्ग' कुछ भी नहीं। कांग्रेस के कार्य्य से कर्नाटक का भाग्योदय हुआ है। यह लोकमान्य तिलक की डैमोक्रेटिक पार्टी की स्कीम का प्रतिफल है। उस स्कीम में भाषानुसार प्रान्त की रचना किये जाने पर ज़ोर दिया गया था। इसके अनुसार नागपुर की राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) ने प्रस्ताव पास कर कानड़ी भाषा बोलनेवाले जन-समुदाय को एक सूत्र में सुसम्बद्ध कर दिया। कर्नाटक प्रान्त के उत्तर में महाराष्ट्र और गोदावरी, दक्षिण में तामील नायडू और केरल, पूर्व में आन्ध्र और पश्चिम में अरब-सागर है। क्षेत्रफल में यह प्रान्त इंग्लैंड और स्काटलैंड के संयुक्त क्षेत्रफल के बराबर है। जब संख्या १ करोड़ ६ लाख है। इस प्रान्त के पश्चिमी भाग की आबादी घनी है। यहाँ की अधिकांश भूमि लाल और कड़ी है। उत्तरी भाग की भूमि काली और नरम है, इस कारण थोड़ी वर्षा हो जाने पर भी खेती का काम चल जाता है। समुद्र के किनारे का, पश्चिमी भाग का जल-वायु स्वास्थ्यप्रद है। परन्तु, जहाँ पहाड़ियाँ और घने जंगल हैं, वहाँ का जल-वायु दूषित है; वहाँ मलेरिया, आदि रोगों का डर रहता है। उत्तरी भाग की अपेक्षा कर्नाटक प्रान्त का दक्षिणी भाग अधिक ठंडा है। दाल, तिलहन, कपास, ईख, और चावल यहाँ की खास पैदावार है। विशेषज्ञों का कहना है कि जैसा लम्बे धागेवाला कपास यहाँ पैदा होता है, वैसा भारतवर्ष के अन्य किसी भाग में नहीं होता। इसके परिणाम स्वरूप खद्दर का व्यवसाय यहाँ का बहुत प्राचीन व्यवसाय है। समुद्री तथा पहाड़ी भागों में कहवा, मसाले और नारियल की प्रचुरता पाई जाती है। कर्नाटक प्रान्तान्तर्गत मैसूर राज्य में कोलारवापी की तथा बेल्लारी में दूसरी प्रसिद्ध सोने की खान है। धारवाड़, बागलकोट, रानीबैनुर, और कारजगी, आदि स्थानों में स्लेट का पत्थर अधिकता से पाया जाता है। इस प्रान्त की मुख्य भाषा कानडी है। कानडी लिपि स्वतन्त्र लिपि है। बेलगाँव,

बीजापुर और धारवाड़ ज़िलों में मराठी भाषा भी बोली जाती है। हैदराबाद के राज्य के समीप इस प्रान्त का जो भाग है, उसमें उर्दू मिश्रित कानडी बोली जाती है। यहाँ की उर्दू पर द्राविड़ी भाषाओं का अधिक प्रभाव पड़ा है।

इस प्रान्त में लिंगायतों, सनातनी हिन्दू और जैनी, ऐसे तीन प्रकार के मनुष्य रहते हैं। कई जिलों में सनातनी हिन्दुओं की अपेक्षा लिंगायतों की संख्या अधिक है। धार्मिक दृष्टि से ब्राह्मण धर्म का प्रभाव अधिक है। सनातनी हिन्दुओं में स्मार्त और वैष्णव नामक दो भेद हैं। स्मार्त्त अद्वैतवादी स्वामी शंकर के अनुयायी तथा वैष्णव द्वैतवादी श्री मध्वाचार्य्य के अनुयायी हैं। इस प्रान्त का सारा व्यवसाय लिंगायतों के हाथ में है। ब्राह्मणों की जीविका नौकरी, साहित्य-सेवा, और खेती पर निर्भर है। मैसूर को छोड़कर अन्य ज़िलों में शिक्षितों में, ब्राह्मणों की संख्या अधिक है। स्त्री-शिक्षा का प्रचार अभी अधिक नहीं है, तो भी मैसूर में शिक्षित स्त्रियों की संख्या काफी है। हिन्दू जाति में जो कुरीतियाँ पाई जाती हैं, उनमें से बहुतों का अभ्यास कर्नाटक प्रान्त में भी पाया जाता है। किसी अंश में सुधार भी हो रहा है। यहाँ लड़के का विवाह १८ या २० वर्ष से पहले और लड़की का ११ या १२ वर्ष से पहले नहीं होता। तिलक-दहेज की कुप्रथा यहाँ भी विराज रही है। लिंगायतों में विवाह-संस्कार 'आचा' नामक लोग तथा सनातनी हिन्दू और जैनों में पुरोहित लोग कराते हैं। यहाँ पर हनुमान जी की पूजा का प्रचलन है। प्रत्येक गाँव में पीपल का वृक्ष तथा हनुमान-मन्दिर पाया जाता है। इसके अतिरिक्त भगवान, व्येंकटरमण, और अनन्तशयन आदि देवताओं के मन्दिर भी कहीं कहीं बने हुए हैं। वे मन्दिर बहुत ऊँचे और सुन्दर बने हुए हैं। उनके बनाने में करोड़ों रुपये खर्च हुए होंगे। इसके अतिरिक्त बीजापुर की दर्शनीय मस्जिदें आज भी अपनी अनुपम शिल्प-कला के प्रदर्शन से कर्नाटक प्रान्त का अतीत स्मृतिगौरव बढ़ा रही हैं।

विजयनगर का प्राचीन साम्राज्य, बीजापुर की बादशाही, टीपू और हैदर आदि की गाथाएँ इतिहासप्रसिद्ध हैं। बीजापुर की मलिकमैदान तोप जिसके

मुँह में एक आदमी अच्छी तरह बैठ सकता है, यहीं पर है। उस तोप की लम्बाई १५ फ़ीट है तथा वह पाँच धातुओं से बनी है। सन् १६०१ में सप्तम एडवर्ड के राज्याभिषेक के समय कपास और बारूद डालकर उस तोप का भूठा फायर किया गया था, पर उसके भयंकर शब्द से मकान हिल गये, छप्पर गिर पड़े और ऐसा मालूम पड़ा मानों कोई भूकम्प हो गया हो। तोप क्या है, सचमुच रण-चण्डी है।

यहाँ विजयनगर देवी का मन्दिर, तथा १५०-२०० फुट की ऊँचाई वाले जैन लिंगायत मन्दिर देखने योग्य हैं। इन मन्दिरों की कारीगरी देखकर बड़े-बड़े शिल्प-विद्या-विशारद चकित हो जाते हैं। इस प्रान्त में बीजापुर की गोलगुम्बज मस्जिद उल्लेखनीय है। एक बार बोलने पर सात बार प्रतिध्वनि होती है।

ज़िला बेलगाँव (कर्नाटक) बम्बई प्रान्त के दक्षिणी भाग में बसा हुआ है। इसका क्षेत्रफल ४६४६ वर्गमील के लगभग है। उत्तरी सीमा पर मिराज और जाठ नामक राज्य तथा उत्तर-पूर्व में बीजापुर का जिला है। पूर्व में कोल्हापुर और धारवाग आदि राज्य, दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में जिला धारवार और उत्तर किनारा, कोल्हापुर और गोआ, तथा पश्चिम में कोल्हापुर राज्य है। इस जिले का अधिकांश भाग मैदान है, परन्तु बीच में कहीं कहीं पहाड़ियाँ देखी जाती हैं। इन पहाड़ियों पर क़िले बने हुए हैं। इस जिले में दो नदियाँ हैं। एक कृष्णा नदी उत्तरी भाग में होकर तथा दूसरी मालप्रभा नदी जिले के दक्षिणी भाग में बहती है। नदियाँ पश्चिम से पूर्व की ओर बहती हैं। उनका पानी बहुत नीचे बहता है और किनारे बहुत ऊँचे पर हैं, इस कारण वहाँ पर नावों से व्यापार नहीं हो सकता। यहाँ पर अधिकतर हिन्दुओं की बस्ती है। जन संख्या में ६६ प्रतिशत के लगभग हिन्दू, ८ प्रतिशत मुसलमान और पाँच प्रति सैकड़ा जैन हैं। हिन्दुओं में भी अधिकांश लिंगायत सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। ईसाइयों की संख्या कम है। यहाँ की जनता में ६५ प्रतिशत कानड़ी, २५ प्रति सैकड़ा मराठी और ८ प्रतिशत हिन्दुस्तानी भाषा बोली जाती है। यहाँ ६६ प्रतिशत लोगों की जीविका खेती

पर, १६ प्रतिशत लोगों की शिल्प पर तथा एक प्रतिशत की जीविका व्यापार पर निर्भर है। यहाँ की भूमि दो प्रकार की है, एक लाल और दूसरी काली। समस्त जिलों के लगभग ३२२५ वर्गमील भूभाग में खेती होती है। उसमें ८० वर्गमील के भू-भाग की सिंचाई नहरों से होती है। यहाँ पर गोकाक और गैर सप्पाक नाम के जलप्रपात बहुत ही सुन्दर हैं। प्रसिद्ध भौगोलिक विद्वानों का कहना है कि ये जलप्रपात अमेरिका के प्रसिद्ध नियागरा नामक जलप्रपात के समान ही मनोहर हैं किन्तु कई बातों में उससे भी बढ़कर हैं।

यहाँ की पैदावार अधिकतर ज्वार है। ८८४ वर्गमील में बोई जाती है। २६७ व० मी० में बाजरा, १७६ में चावल, और १५७ में गेहूँ होते हैं। चिकौदी, ईख और तम्बाकू के लिये भी यह जिला प्रसिद्ध है। ३५२ वर्गमील के ५ भाग में केवल तम्बाकू ही बोई जाती है। जंगलों में सागवान, शीशम, और तिरवार आदि के वृक्ष बहुत हैं। कहीं कहीं बाँस भी पाया जाता है, जो मकान आदि के बनाने के काम में आता है। कहा जाता है कि पूर्वकाल में कोल्हापुर की ओर बलुआ पत्थर में से हीरे तथा भालप्रभा की तराई में से सोना निकाला गया था। इस ज़िले में लोहा भी पिघलाया जाता था। परन्तु, पीछे लोहा सस्ता हो गया और यहाँ के लोहे में व्यय अधिक पड़ने लगा, अतः यह काम बन्द कर दिया गया। यहाँ अधिकतर कपड़ा बुनने का काम होता है। जुलाहों में मुसलमान अधिक हैं। लिंगायती लोग भी कपड़ा बुनते हैं। एक दो स्थानों पर बहुत अच्छा कपड़ा बुना जाता है। पहले गोकाक आदि स्थानों में रंगाई का काम भी अच्छा होता था। यहाँ के मिट्टी और लकड़ी के खिलौने प्रसिद्ध हैं। अंगरेज़ व्यापारियों ने एक मिल भी खोली है, वह पानी के ज़ोर से चलाई जाती है। कई स्थानों पर चमड़े की रंगाई भी होती है। इस ज़िले से चावल, कपास और तम्बाकू बाहर जाते हैं और कपड़ा, रेशम और गेहूँ बाहर से आते हैं। प्रति सप्ताह कई स्थानों पर हाट लगती है, जिसमें आस-पास के बीस-बीस गावों तक के आदमी आवश्यक सौदा खरीदते हैं। यहाँ पर रेलवे की कई लाइने हैं जिनमें से साउथ

मराठा रेलवे अधिक प्रसिद्ध है। यह लाइन इस ज़िले के उत्तर से मध्यभाग में होती हुई दक्षिण को जाती है।

यह ज़िला ऊथवा, चिकौदी, बेलगाँव, गोकाक, सैम्पगाँव, खानपुर, और प्रासगढ़ नामक सात तहसीलों में विभाजित है। यहाँ का सबसे पुराना नगर हल्सी है। यहाँ जो ताम्रपत्र मिले हैं, उनसे पता चलता है कि पहले यहाँ पर कादम्बों का राज्य था, और यह नगर उनकी राजधानी था। सबसे पहले इस प्रदेश के शासक चालुक्य थे। सन् ७६० ईस्वी के लगभग यह प्रान्त राष्ट्रकूट वंश के हाथ में आ गया। राष्ट्रकूटों ने अपनी राजधानी वेणुग्राम (वर्त्तमान बेलगाँव) नामक नगर में स्थापित की। तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में हल्सी में कदम्ब वंश राज्य करता था। बाद में सन् १३२० तक यह प्रदेश यादवों के अधिकार में रहा। सन् १४७४ के लगभग बेलगाँव बहमनी राज्य में मिला लिया गया। इसके बाद लगभग १५० वर्ष तक यह बीजापुर राज्य का ही एक भाग बना रहा। बाद में कुछ दिनों मराठों के अधिकार में रहा और फिर इसे हैदरअली ने अपने राज्य में मिला लिया। पीछे फिर मराठों ने इस पर क़ब्ज़ा जमाया, अन्त में सन् १८१८ ईस्वी में यह भूमि अंगरेज़ी राज्य में मिला ली गई। सन् १८६६, १८९६ आदि में यहाँ पर घोर दुर्भिक्ष पड़े।

बेलगाँव के आस पास बड़ा घना जंगल है। शायद इसी कारण बेलगाँव का पुराना नाम वेणुग्राम था। बेलगाँव नगर बड़ा पुराना नगर है। उसका पुराना क़िला भी है। आज कल वहाँ छावनी बनी हुई है। इस नगर की जन-संख्या ३६,००० से कुछ ऊपर है। नगर का आन्तरिक प्रबन्ध म्यूनिसिपैलिटी के द्वारा होता है। कलक्टर आदि सरकारी कर्मचारी भी नगर में रहते हैं। इस नगर के पूर्व में क़िला और छावनी है। छावनी और नगर के मध्य में एक छोटी जल-धारा बहती है। क़िले के चारों ओर खाई है। कहा जाता है कि यह क़िला सन् १५१९ ईस्वी में बनवाया गया था। इसमें दो विशालकाय जैन मन्दिर ७०० वर्ष पुराने हैं। सन् १२०५ ई० में रत्त वंश के लोगों ने इस क़िले को जीत कर अपनी राजधानी बनाया था। १२५० में

इसे यादवों ने छीन लिया। सन् १३७५ में यह विजयनगर का एक भाग बन गया। बाद में कभी मुसलमानों, और कभी मराठों के अधिकार में रहा और सन् १८१८ में अंगरेज़ों के हाथ में आ गया। इसके अतिरिक्त आसदखाँ की दरगाह और साफा मस्जिद भी देखने योग्य हैं। यहाँ के विशाल भवनों और मस्केट्टी पहाड़ी के मन्दिरों की शोभा देखते ही बनती है। इस नगर में चरखों, और करघों का खूब प्रचार है। अकेले बेलगाँव में ही प्रति वर्ष १॥ लाख रुपये की खादी तैयार होती है। कपास की फसल अच्छी होती है। यहाँ कई स्कूल और अस्पताल हैं।

इस वर्ष (सन् १९२४ ई०) की कांग्रेस बेलगाँव में महात्मा गाँधी के सभापतित्व में हो रही है। काँग्रेस के साथ ही हिन्दूमहासभा, खिलाफत-कान्फ्रेन्स, विद्यार्थीसम्मेलन, सामाजिककान्फ्रेन्स और महिलाकान्फ्रेन्स आदि लगभग २० संस्थाओं के अधिवेशन हो रहे हैं। इस बार की काँग्रेस कई दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण और विशेषता लिये हुए है।

७—बड़ौदा के पुस्तकालय

"शिक्षा ही किसी राष्ट्र का निर्माण करती है, उसे स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाती है और उसे राष्ट्रीय आदर्शों को प्राप्त करने के योग्य बनाती है।"

—शाह अमानुल्लाखाँ'

भारत के देशी राज्यों में बड़ौदा ही एक ऐसा राज्य है, जिसने सावजनिक शिक्षा के लोकोपयोगी काम को अपने यहाँ सब से अधिक महत्व दिया है। जन-समाज में सार्वजनिक शिक्षा को अधिक से अधिक व्यापक रूप में प्रचारित करने का श्रेय बड़ौदा के लोकप्रिय नरेश महाराज सयाजीराव गायकवाड़ को प्राप्त है। सन् १८८१ में जब से बड़ौदा राज्य के शासन की बागडोर उनके हाथों में आई, तभी से सार्वजनिक शिक्षा के प्रचार की एक बड़ी स्कीम उनके

मस्तिष्क में थी। अनिवार्य और निःशुल्क सार्वजनिक शिक्षा का श्रीगणेश करके उन्होंने उस लोकोपयोगी स्कीम को कैसे कार्य रूप में परिणत कर दिखाया, यह बात आज स्पष्ट रूप से देश के सामने है।

महाराज गायकवाड़ ने यूरोपीय देशों का खूब भ्रमण किया है। यूरोप और अमेरिका के व्यवस्थित पुस्तकालयों का निरीक्षण करने पर उन्हें सार्वजनिक शिक्षा के कामों में उनकी उपयोगिता का पता चला। इसी कारण उन्होंने अपने राज्य के अपढ़-कुपढ़ लोगों में शिक्षा का अधिक से अधिक प्रचार करने के लिए सार्वजनिक पुस्तकालयों की स्थापना करने का विचार किया। थोड़े ही दिन बाद उन्होंने अपने इस उपयोगी विचार को कार्य रूप में परिणत कर दिखाया। इस देश में सबसे पहले महाराज सयाजीराव गायकवाड़ ही ने साधारण जन-समाज में शिक्षा-प्रचार के उद्देश्य से निःशुल्क सार्वजनिक पुस्तकालयों की स्थापना की। इस काम के लिए उन्होंने न्यू हैवेन अमेरिका के पुस्तकालय यङ्गमेन्स इन्स्टीट्यूट के पुस्तकाध्यक्ष मि० डब्ल्यू० ए० बोरडन को बुलाया और उन्हें बड़ौदा राज्य के पुस्तकालय विभाग का संयोजक बना दिया।

अपने तीन वर्ष के कार्य-काल में मि० बोरडन ने बड़ौदा में सेण्ट्रल लाइब्रेरी की स्थापना की और राज्य के सभी प्रदेशों में राज्य की सहायता से निःशुल्क सार्वजनिक पुस्तकालय और वाचनालय स्थापित कर दिये। जिन छोटे-छोटे गाँवों में पुस्तकालय न खोले जा सके, उनके निवासियों के लिए उन्होंने गश्ती पुस्तकालय खोल दिये और एक ऐसे विभाग की भी स्थापना कर दी, जो देहात की अपढ़-कुपढ़ जनता के लिए चित्र-पट (सिनेमा) द्वारा शिक्षा दिए जाने का प्रबन्ध करता है।

पुस्तकालयों की स्थापना करते समय महाराज सयाजीराव ने जिस सिद्धान्त को कार्यरूप में परिणत कराने पर ज़ोर दिया, वह यह था कि इस पुस्तकालयप्रणाली के अनुसार सभी पुस्तकालय प्रत्येक जाति और धर्म के तरुण, वृद्ध, अमीर-ग़रीब सभी के लिए सर्वथा निःशुल्क खुल जाने चाहिए। यह इसलिए कि प्रत्येक जाति और धर्म के अमीर-ग़रीब सभी लोग बिना किसी भेद-भाव के समान रूप से पुस्तकालयों का उपयोग कर सकें।

पुस्तकालय-विभाग को राज्य से कुछ सहायता दी जाती है और आम तौर पर यह शिक्षा कमिश्नर के नियन्त्रण में चलता है। इस विभाग के कर्मचारियों में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, पाँच पुस्तकाध्यक्ष, सिनेमा-सञ्चालक तथा बीसियों अन्य आदमी काम करते हैं।

पुस्तकालय के महकमे के दो हिस्से हैं। एक में बड़ौदा शहर और छावनी, तथा दूसरे में समूचा राज्य शामिल है।

सेंट्रल लाइब्रेरी में, जिसका सम्बन्ध मुख्यतया राजधानी से है, नीचे लिखी बातों का प्रबन्ध होता है—

जेनरल-ऑफ़िस, तथा क्लर्कों के काम की व्यवस्था, पुस्तकें वितरित करने का काम, सूचना और सूची-विभाग, वाचनालय, बच्चों का और महिला-पुस्तकालयविभाग, महिला शाखा-पुस्तकालय, पुस्तक-जिल्दबँधाई-विभाग।

राज्य-शाखा-विभाग उपाध्यक्ष के सुपुर्द कर दिया गया है। उसमें इन बातों की व्यवस्था की जाती है :—

क़स्बा और ग्राम-पुस्तकालय, गश्ती-पुस्तकालय, और चित्र-पट शिक्षा-विभाग।

बड़ौदा-सेन्ट्रल लाइब्रेरी का संस्कृत-विभाग इतिहास, पुरातत्त्व और साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण था। परन्तु पहली सितम्बर सन् १९२७ से उसे बिल्कुल अलग करके 'ओरियण्टल-इन्स्टीट्यूट' का रूप दे दिया गया है।

महाराज गायकवाड़ सदा उत्तम पुस्तकों के प्रेमी और पाठक रहे हैं। उनके निजी पुस्तकालय में लगभग २० हज़ार उत्तम ग्रन्थों का संग्रह था। उसमें इतिहास, जीवन-चरित्र, समाज-विज्ञान आदि विषयों पर उत्तमोत्तम पुस्तकें थीं। सार्वजनिक हित की दृष्टि से उन्होंने सन् १९११ में अपनी सब पुस्तकें बड़ौदा की सेन्ट्रल-लाइब्रेरी को प्रदान कर दीं। आज तो उस लाइब्रेरी में १ लाख से कहीं अधिक ग्रन्थ-रत्नों का संग्रह हो चुका है। गश्ती-पुस्तकालय और सस्कृत-विभाग की पुस्तकें इस संख्या में शामिल नहीं हैं।

पुस्तकें वितरित करने वाली लाइब्रेरी रविवार, बुधवार तथा अन्य सरकारी छुट्टियों को छोड़कर, सायंप्रातः दिन में दो बार खुलती है। पढ़ने को पुस्तकें वितरण करने वाले घंटों में, वितरण-विभाग के सुपरिन्टेण्डेण्ट और ४ क्लर्क बराबर उपस्थित रहते हैं। सुपरिन्टेण्डेण्ट नये सिरे से पुस्तकें लेने वालों का नाम रजिस्टर में दर्ज करते हैं, वितरण-कार्य पर पूरा नियन्त्रण रखते हैं और उन लोगों के लिये तक़ाज़े का पत्र जारी करवाते हैं, जो समय के भीतर पुस्तकें वापस करने में ग़फ़लत करते हैं। इसके अतिरिक्त सुपरिन्टेण्डेण्ट पाठकों को वह सब सहायता और सलाह देते हैं, जिनकी उन्हें ज़रूरत पड़ती है। पुस्तकालय के कर्मचारी वापस आई हुई पुस्तकों को यथास्थान आलमारियों में रख देते हैं और पाठकों द्वारा तितर-बितर की हुई पुस्तकों को तुरन्त सँभाल देते हैं। जिन पुस्तकों की जिल्द उखड़ी या टूटी हुई होती है, वे तुरन्त ही जिल्द-बँधाई विभाग में जिल्द बँधने के लिए भेज दी जाती हैं। मतलब यह है कि पुस्तकालय का हर काम बहुत ही सुचारु और व्यवस्थित रूप से किया जाता है। सेण्ट्रल लायब्रेरी में पाठकों को पढ़ने के लिए नित्य जो पुस्तकें वितरित की जाती हैं, उनकी संख्या भारत के किसी भी सार्वजनिक पुस्तकालय की संख्या से अधिक है।

समूचे बड़ौदा राज्य की मातृ-भाषा गुजराती है, अतः प्रत्येक ज़िले के पुस्तकालय वहाँ के रहने वालों को उसी भाषा में पुस्तकें वितरित करते हैं। परन्तु बड़ौदा नगर की दशा इससे कुछ भिन्न है। वहाँ दस हज़ार से अधिक मराठी भाषा-भाषी तथा उर्दू का व्यवहार करने वाले कुछ मुसलमान भी हैं। इधर राज्य भर में हिन्दी को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया जा रहा है। फलस्वरूप हिन्दी भाषा जानने वालों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। यही कारण है कि सेण्ट्रल लाइब्रेरी में अङ्गरेज़ी, गुजराती, मराठी भाषाओं के पुस्तकों के साथ ही हिन्दी और उर्दू की पुस्तकें भी रक्खी गई हैं। लाइब्रेरी के विभिन्न भाषा-भाषी पाठकों के पुस्तक-वितरण का वार्षिक हिसाब सन् १९२९ में इस प्रकार था :—

गुजराती ३७६ प्रति सैकड़ा, अङ्गरेज़ी २९·६ सैकड़ा, मराठी २७६ सैकड़ा, हिन्दी और उर्दू ४६ प्रति सैकड़ा।

इन आँकड़ों से पता चलता है कि आज से ६ वर्ष पहले बड़ौदा सेण्ट्रल लाइब्रेरी के हिन्दी या उर्दू पाठकों की संख्या कितनी कम, या नहीं के बराबर थी। इधर महाराज के उद्योग से हिन्दी की प्रगति तेज़ी के साथ बढ़ रही है, इसी कारण हिन्दी पाठकों की उक्त संख्या में स्पष्ट रूप से वृद्धि हुई है।

बड़ौदा की सेण्ट्रल लाइब्रेरी प्रत्येक दृष्टि से अप-टू-डेट लाइब्रेरी है। उसमें दर्शन, मनोविज्ञान, इतिहास, धर्म, नीति, समाज-शास्त्र, साहित्य, विदेशी साहित्य, ललित कला, नाटक, काव्य, उपन्यास आदि प्रायः सभी उपयोगी विषयों पर उच्चकोटि के ग्रन्थ संगृहीत किये गये हैं। पदार्थ विज्ञान, युद्ध तथा नाविक विद्या के भी अद्भुत ग्रन्थों का संग्रह किया गया है। ऐसा कोई विषय ढूँढ़े भी न मिलेगा जिसपर उच्चकोटि की पुस्तकें मँगा कर यहाँ न रक्खी गई हों। सूचीपत्र बिल्कुल वैज्ञानिक ढङ्ग से बनाए गए हैं। उनमें पुस्तक के लेखक का नाम, विषय और पुस्तक का नाम क्रमशः छपा रहता है।

अमेरिका में लाइब्रेरी केवल पुस्तकों ही से जनसाधारण को लाभ नहीं पहुँचाती, बल्कि उन्हें हर प्रकार की सूचना देने का काम भी वह कर सकती है। यही प्रबन्ध बड़ौदा सेण्ट्रल लाइब्रेरी के अधिकारियों ने भी किया है। देश-विदेश के बीसियों आदमी पत्र-व्यवहार करके उनसे अपने काम की बातों के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करते हैं और उनसे यथोचित सूचना और उत्तर पाकर अपना काम चलाते हैं। एक बार अमेरिका से एक सज्जन ने पत्र लिखकर पूछा था कि भारत में साँप के काटने से प्रतिवर्ष कितने आदमी मर जाते हैं और साँप के ज़हर को नष्ट करने के लिए आम तौर पर क्या इलाज किया जाता है। अमेरिका और इङ्गलैण्ड से दो आदमियों ने पत्र लिखकर यह पूछा था कि भारतीय पुस्तकालयों की सूची कहाँ मिलेगी। इसी प्रकार अनेक स्थानों से लिखा-पढ़ी करके लोग तरह-तरह की बातें पूछते हैं। लाइब्रेरी के अधिकारी यथासाध्य ऐसे प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर देने का प्रबन्ध करते हैं।

बड़ौदा की सेण्ट्रल लाइब्रेरी में प्रतिवर्ष नयी-नयी पुस्तकें मँगाई जाती हैं। इस काम के लिए नगर के अनेक प्रोफ़ेसरों और साहित्य-विशेषज्ञों की कमेटियाँ बनी हुई हैं। यही कमेटियाँ लाइब्रेरी के लिए उत्तमोत्तम पुस्तकें चुनने का काम करती हैं।

बालक्रीड़ा भवन

बड़ौदा के बच्चों के खेल-कूद और पढ़ने-लिखने के लिए सेण्ट्रल लाइब्रेरी में खास तौर से प्रबन्ध किया गया है। लाइब्रेरी के पुस्तक वितरण करने वाले विभाग में ख़ास तौर से लड़कों के पढ़ने लायक़ तीन हज़ार अङ्गरेज़ी पुस्तकें संगृहीत की गई हैं, जिन्हें बच्चे और युवक बड़े चाव से पढ़ते हैं। छोटे-छोटे ऐसे बच्चों के लिए, जो अङ्गरेज़ी नहीं जानते, बाल-क्रीड़ा-भवन में मनोरञ्जन का यथोचित आयोजन कर दिया गया है। एक विशाल और हवादार हाल सुन्दर चित्रों से सजाया गया है, और उसमें अङ्गरेज़ी तथा देशी भाषाओं के पत्र और पुस्तकें रखी गई हैं; और ऐसे बीसियों चुने हुए खेलों की व्यवस्था कर दी गई है जो उस हाल के अन्दर खेले जा सकें। बच्चे ऐसे खेलों में बहुत दिलचस्पी लेते हैं और अङ्गरेज़ी तथा गुजराती भाषा के नये-नये शब्द बनाने तथा शब्द-विनिमय के खेल भी वे बड़े चाव से खेलते हैं।

समय-समय पर एक स्कूल की कक्षाएँ केवल कहानी-प्रतियोगिता के लिए आमन्त्रित की जाती हैं। उनमें लड़के कहानी कहने और सुनने में बड़ा उत्साह दिखाते हैं। उन कक्षाओं में प्रतिदिन ६० से ७० तक लड़के उपस्थित रहते हैं। बड़ौदा सेण्ट्रल लाइब्रेरी का यह बाल-क्रीड़ा-भवन अपने ढङ्ग का सचमुच अनूठा है। इसकी कुशल व्यवस्थापिका उच्च शिक्षा प्राप्त एक मराठी महिला हैं। जब से यह भवन खुला है तभी से वे बड़े उत्तरदायित्व के साथ बालकों की शिक्षा के इस अद्‌भुत कार्य का सम्पादन करने में संलग्न हैं। बच्चों के खेल-कूद और शिक्षा-दीक्षा का उन्हें पर्याप्त अनुभव है। इसी कारण नवागत बालकों के लिए उनकी योग्यता के अनुसार खेल और पुस्तकें चुनने में वे बड़ी पटुता से काम लेती हैं।

बच्चों की शिक्षा का प्रश्न सबसे अधिक आवश्यक और सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है, इसलिए कि बच्चे ही आगे चल कर देश के राष्ट्रीय जीवन के कर्णधार बनते हैं। इसी कारण यूरोपीय और अमेरिकन जैसे स्वतन्त्र और शक्तिशाली राष्ट्र बच्चों की शिक्षा पर सबसे अधिक ध्यान देते हैं, और इस काम में अधिक से अधिक धन खर्च करके वे इसकी अधिक से अधिक सुन्दर और उपयुक्त व्यवस्था करते हैं। एक अमेरिकन शिक्षा-मर्मज्ञ का कहना है—

"The School and the Library are the two legs upon which the body politic stands; one exists to start education, the other to continue it, and it is as important to teach children what to read as it is to teach them how to read."

अर्थात्—स्कूल और पुस्तकालय दो टाँगें हैं, जिन पर राज्य का ढाँचा खड़ा है; एक की हस्ती शिक्षा का श्रीगणेश करने के लिए और दूसरे की उसे जारी रखने के लिए होती है, और बच्चों को यह सिखाना कि वे क्या पढ़ें, उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि उन्हें यह सिखाना कि कैसे पढ़ें।

बड़ौदा-सेण्ट्रल लाइब्रेरी के अन्तर्गत खुले हुए बालक्रीड़ा-भवन में जाने पर प्रत्येक दर्शक इस बात की उपयोगिता को हृदयङ्गम कर सकता है कि खेल-कूद के साथ ही बच्चों के हृदय में शिक्षा का बीज बो देना कितना आवश्यक है। आधुनिक उन्नत देशों ने बालकों के खेल-कूद और शिक्षा के लिए जो वैज्ञानिक प्रणालियाँ निकाली हैं, उनका परिष्कृत रूप कुछ यहाँ देखने को मिलता है। जो पुस्यतकें बालक आनन्द के लिए पढ़ते हैं, वे उनके चरित्र-निर्माण और पवित्र आदर्श निश्चित करने में उन पुस्तकों की अपेक्षा अधिक सहायक सिद्ध होती हैं, जिन्हें वे स्कूलों में परीक्षा के लिए पढ़ते हैं। बाल-क्रीड़ा-भवन में एक बालक सचित्र वर्णमाला और चित्र कहानियों से पढ़ना आरम्भ कर देता है और यहाँ कुशल पथदर्शिका के विनम्र और सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार और सहायता से वह स्वतः ही धीरे-धीरे आगे बढ़ता

जाता है। आगे चल कर क्रमशः वह पुस्तकालय की उन विभिन्न और नयी-नयी पुस्तकों को देखने में प्रवृत्त कर दिया जाता है, जो शिक्षा-मर्मज्ञों के परामर्श से हाई-स्कूल की श्रेणियों तक के विद्यार्थियों के लिए चुन-चुन कर वहाँ संगृहीत कर दी गई हैं। इस प्रकार बालक धीरे-धीरे शिक्षित बनते जाते हैं और उनका दिमाग़ विकसित होता जाता है और साथ ही उनमें अधिक ऊँची योग्यता की पुस्तकें देखने की अभिरुचि उत्पन्न होती जाती है। जो विद्यार्थी हाई-स्कूल से कॉलिज में जाकर अपना अध्ययन जारी रखते हैं, उनके लिए यहाँ विभिन्न विषयों पर पढ़ने को विपुल सामग्री मिलती है, किन्तु संयोग से जिनका पढ़ना हाई-स्कूल तक ही समाप्त हो जाता है और जो आगे अपना अध्ययन जारी रखने की इच्छा रखते हैं, उनके लिए तो यह पुस्तकालय एक जीवन पाठशाला के रूप में, तथा वहाँ का सुयोग्य पुस्तकाध्यक्ष एक शिक्षक के रूप में परिणत हो जाता है, जिसकी उपयुक्त सहायता से वे अधिक से अधिक समय तक स्वेच्छानुसार अपना अध्ययन जारी रख सकते हैं।

बाल-क्रीड़ा-भवन, सचमुच बड़ौदा-सेन्ट्रल-लाइब्रेरी की एक ऐसी विशेषता है जो बाहर से आने वाले दर्शकों का बरबस मन मोह लेती है। यह भवन सन् १९१३ में उस समय खुला था जब महाराज सयाजीराव गायकवाड़ का ध्यान बाल-साहित्य पर उत्तमोत्तम पुस्तकें निकलवाने की ओर आकर्षित हुआ था। यहाँ का वातावरण बहुत ही स्वच्छ और ऐसा है जहाँ पहुँच कर बच्चे बिल्कुल अपने घर का सा सुख अनुभव करते हैं। यहाँ हर अवस्था, हर दशा और हर कक्षा के बच्चे आकर अपनी-अपनी अभिरुचि के अनुसार खेलते-कूदते और लिखते-पढ़ते हैं। सचमुच बच्चों के खेल-कूद, ज्ञानार्जन और विकास के जो अधिक से अधिक उपयुक्त साधन यहाँ उपलब्ध हैं, वे देश में अन्यत्र ढूँढ़े भी न मिलेंगे।

महिला-पुस्तकालय

यदि बच्चे राष्ट्र की रीढ़ हैं तो स्त्रियाँ उसकी सञ्जीवन-शक्ति। जो क़ौम स्त्रियों की, या स्त्रियों के रूप में अपनी सञ्जीवन-शक्ति की, उपेक्षा करती है,

वह सचमुच तबाह हो जाती है। बड़ौदा के लोकप्रिय नरेश ने इस परम-तत्त्व को हृदयङ्गम करके अपने राज्य में स्त्रियों की शिक्षा के लिए अधिक से अधिक उत्तम व्यवस्था कर दी है। कन्या-पाठशालाओं के अतिरिक्त उन्होंने अपने यहाँ महिला-पुस्तकालय भी खुलवाया है। यह पुस्तकालय एक गुजराती महिला की अध्यक्षता में चलाया जा रहा है। इसमें स्त्री-जीवन की विभिन्न दिशाओं पर ज्ञान-वर्द्धक पुस्तकें सगृहीत की गई हैं। बहुत सी स्त्रियोपयोगी पत्र-पत्रिकाएँ भी आती हैं। सेन्ट्रल लाइब्रेरी आवश्यकतानुसार अपनी पुस्तकें महिला-पुस्तकालय को देती रहती है। शहर की स्त्रियाँ इस पुस्तकालय से अधिक से अधिक लाभ उठाती रहती हैं। यहाँ की दो महिला पुस्तकाध्यक्षा प्रति सप्ताह बड़ौदा के महिला-क्लबों में जाकर उनके मेम्बरों को पढ़ने के लिए पत्र-पुस्तकें वितरित करती हैं। इस प्रकार इस महिला पुस्तकालय ने बड़ौदा में स्त्री-शिक्षा के एक बड़े अभाव की पूर्त्ति कर दी है।

बड़ौदा-सेन्ट्रल लाइब्रेरी का वाचनालय भी बहुत सुव्यवस्थित और सुचारु रूप से चलाया जाता है। यह वर्ष भर प्रतिदिन १२ घन्टे खुला रहता है, रविवार या अन्य किसी छुट्टी के दिन भी, कभी बन्द नहीं होता। विभिन्न भाषाओं की लगभग २०० पत्र-पत्रिकाएँ यहाँ आती हैं। बड़ौदा की जनता के लिए यह वाचनालय बड़े काम का सिद्ध हुआ है। अमीर-ग़रीब बिना किसी भेद-भाव के सभी समान रूप से इसका उपयोग करते हैं।

ज़िला-पुस्तकालय

बड़ौदा राज्य भर में पुस्तकालयों की शाखाएँ खुल गई हैं। ज़िले के पुस्तकालय, लाइब्रेरियों के असिस्टेंट क्यूरेटर के सुपुर्द हैं। वह बड़े-बड़े पुस्तकालयों का निरीक्षण करता है, शेष पुस्तकालयों का निरीक्षण शिक्षा-विभाग के डिप्टी इन्स्पेक्टर करते हैं। ज़िला-पुस्तकालय विभाग सन् १६१० में खुला था। सन् १६०७ में महाराज पहले-पहल अमेरिका गये थे। वहाँ से वापस आकर ही उन्होंने बड़ौदा राज्य में ज़िला-पुस्तकालय आन्दोलन का श्रीगणेश किया। उनके आदेशानुसार पुस्तकालय-विभाग इसलिए खोला गया कि वह

प्रत्येक क़स्बा, ताल्लुक़ा और गाँव में गश्ती पुस्तकालयों की स्थापना कर दे, जिससे साधारण ग्रामीण जनता नए-नए पत्र और पुस्तकें पढ़ने का अवसर पा सके और समाचार पत्रों द्वारा नई दुनिया के संसर्ग में रह सके।

इसी उद्देश्य से विभिन्न ज़िलों में क़स्बा और ग्राम-पुस्तकालयों का जाल फैला दिया गया है। छोटे-छोटे गाँवों के लोगों के लिए गश्ती पुस्तकालय खोल दिये गये हैं। ये पुस्तकालय जनता, सरकार और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के बीच पारस्परिक सहयोग के सिद्धान्त पर स्थापित किये गये हैं। इन पुस्तकालयों का श्रेणी-विभाग ग्राम क़स्बा और प्रान्त के अनुसार किया गया है। यदि कोई पुस्तकालय अपनी नियत श्रेणी के अनुसार १००, ३०० या ७०० रुपये की रक़म एकत्र कर लेता है, तो उसे इतनी ही रक़म डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और राज्य की सरकार से सहायता के रूप में मिल जाती है। यदि कोई पुस्तकालय अपना निज का मकान बनवाना चाहता है तो उसे मकान में होने वाले कुल रुपये के खर्च का एक तिहाई रुपया जोड़ना पड़ता है, और बाक़ी दो तिहाई रुपया डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और पुस्तकालय-विभाग से मिल जाता है। यदि गाँव वालों के पास पुस्तकालय बनाने के लिए एक तिहाई रुपया भी हो तो, वे अपने गाँव में वाचनालय खोल सकते हैं जिसमें लोग पत्र-पत्रिकाएं पढ़ कर बहुत लाभ उठा सकते हैं, और वाचनालय के खर्च के लिए सरकार और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से रुपया मिलता है। इसके अतिरिक्त नया ग्राम पुस्तकालय सर्वोत्तम गुजराती पुस्तकों में से सौ रुपये की पुस्तकें पुस्तकालय-विभाग से केवल पच्चीस रुपये में ले सकता है। इस सम्बन्ध में यह बात मुख्यतया उल्लेखनीय है कि समस्त पुस्तकालय और वाचनालय अपनी आवश्यकतानुसार पुस्तकें गश्ती पुस्तकालय विभाग से उधार भी ले सकते हैं।

बड़ौदा राज्य के बड़े-बड़े क़स्बों—अमरेली, मेहसना, तवसारी और द्वारका में पुस्तकालय स्थापित हैं। वे पुस्तकालय अपने निज के मकानों में ही खुले हुए हैं।

ग्राम-पुस्तकालय

बड़ौदा-राज्य की ८० फ़ीसदी जनता देहात में रहती है। वहाँ शिक्षा का प्रचार क़स्बों और शहरों की अपेक्षा बहुत कम है। यहाँ भी पुस्तकालय आन्दोलन बढ़ता जा रहा है। अब तक गाँवों में ६४५ पुस्तकालय और १४४ वाचनालय खुल चुके हैं। ५६ गाँवों में पुस्तकालय अपने निज के मकानों में ही खुले हैं, शेष गाँवों के पुस्तकालय किराये के मकानों में, या धर्मशालाओं और स्कूलों की इमारतों में अपना काम चला रहे हैं। ग्राम-पुस्तकालय का वार्षिक खर्च ३०० रुपये से अधिक नहीं होता।

गश्ती-पुस्तकालय

ये पुस्तकालय राज्य के उन सुदूरस्थ स्थानों के लिए खुले हुए हैं, जहाँ बिलकुल पुस्तकालय नहीं हैं, अथवा जहाँ के निवासी पढ़ने के लिए पुस्तकें प्राप्त कर नहीं सकते। जहाँ लोग अज्ञानान्धकार में डूबे हुए हैं, ग़रीबी के कारण जहाँ ज्ञान की प्रकाश-किरणें पहुँच ही नहीं पातीं, वहाँ के दीन-हीन तथा अपढ़-कुपढ़ लोगों में ज्ञान फैलाने का गश्ती-पुस्तकालय से बढ़ कर कोई दूसरा साधन नहीं हो सकता। भारत में सबसे पहले बड़ौदा में मई सन् १९११ में सार्वजनिक हित के लिए इस प्रणाली का प्रचलन किया गया।

इस काम के लिए पुस्तकालय-विभाग ने बड़े मज़बूत हलके लकड़ी के बक्स तैयार कराये। ऐसे बक्स, जिन्हें कुली आसानी से उठाकर ले जा सकें। इन बक्सों में पुस्तकें भर कर ताला बन्द कर दिया जाता है। प्रत्येक बक्स बिना किसी पैकिंग के रेल से भी किसी पुस्तकालय-केन्द्र में भेज दिया जाता है और कुञ्जी डाक से भेज दी जाती है।

अब से कुछ वर्ष पहले तक गश्ती-पुस्तकालय-विभाग में ४१२ ऐसे लकड़ी के बक्स थे और १८६३३ पुस्तकें थीं। उनमें १५ हज़ार पुस्तकें गुजराती भाषा की, २१३३ अङ्गरेज़ी की, तथा शेष मराठी, हिन्दी और उर्दू की थीं।

गश्ती-पुस्तकालय के १२३ केन्द्रों में प्रतिवर्ष प्रायः १३-१४ हज़ार पुस्तकें ग्रामीण जनता को पढ़ने को दी जाती हैं। सन् १९२८ तक पिछले १७ वर्षों में १,३८,९७३ पुस्तकें लोगों को पढ़ने को दी गई थीं। गश्ती-पुस्तकालय-विभाग में प्रायः ३ हज़ार रुपये प्रति वर्ष खर्च होते हैं। कुछ गश्ती बक्स खेलों और मनोरंजन का सामान तथा संसार के विभिन्न देशों के निवासियों के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले विविध प्रकार के चित्रों और सीन-सीनरी का सामान पहुँचाने के काम में भी लाये जाते हैं। अभिप्राय यह है कि गश्ती-पुस्तकालयों से ग्रामीण-जनता को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने का पूरा उद्योग किया जाता है।

चित्रपट (सिनेमा) विभाग

आज की दुनिया सार्वजनिक शिक्षा-प्रचार में चित्रपट का बड़ा उपयोग कर रही है। रूस की ग्रामीण जनता को ऊँचा उठाने के लिए चित्रपट बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस दशा में बड़ौदा राज्य अपनी निरक्षर और अपढ़-कुपढ़ ग्रामीण जनता में शिक्षा का प्रचार करने में चित्रपट का उपयोग क्यों न करता ?

सन् १९१२ में बड़ौदा में सेण्ट्रल लाइब्रेरी का चित्रपट विभाग खोला गया। इससे देहाती जनता को मैजिक-लैण्टर्न द्वारा संसार के समुन्नत देशों के निवासियों के चरित्र दिखलाये गये। विभिन्न देशों के प्राकृतिक और ऐतिहासिक घटनाओं के सचित्र-वर्णन से राज्य के लोगों को सचमुच बड़ा लाभ पहुँचा। उनकी जानकारी का क्षेत्र पहले से अधिक विस्तीर्ण हो गया।

चित्रपट विभाग के पास सिनेमा की तीन बड़ी मशीनें हैं। अमेरिका की एक मशीन, जिसका मूल्य १२०० रुपये है, लगभग २० फ़ीट के फ़ासले से ५×४ फ़ीट के छाया-चित्र का प्रतिबिम्ब डालती है। दूसरी मशीन ८×६ फ़ीट का चित्र दिखाती है। इसी प्रकार की एक तीसरी मशीन है, जो बहुत सुन्दर छाया-चित्र दिखाने के काम में आती है। कई शिक्षाप्रद फ़िल्में भी

मँगा ली गई हैं और समय-समय पर नई-नई फ़िल्में मँगा कर भी मनोरंजक प्रदर्शन किये जाते हैं।

चित्रपट-विभाग बड़ौदा राज्य के प्रायः सभी स्थानों में विभिन्न प्रकार के शिक्षाप्रद खेल दिखाता है। इन खेलों को देखकर अधिक से अधिक लोग मनोरंजन के साथ ही ज्ञानार्जन भी करते हैं। स्त्रियाँ, बच्चे, तरुण, वृद्ध, हर प्रकार के अमीर-ग़रीब लोग इन खेलों को देखने आते हैं और अपनी-अपनी अभिरुचि के अनुसार शिक्षा प्राप्त करते हैं। कभी-कभी तो इन खेलों में इतनी भीड़ होती है कि उस पर नियंत्रण करना कठिन हो जाता है। पुस्तकालय-विभाग की अन्य बातों की तरह ये खेल जनता को बिल्कुल निष्शुल्क दिखाये जाते हैं। समय-समय पर चित्रपट-विभाग की सेवाएँ राज्य के अन्य विभागों, अन्य देशी राज्यों तथा अङ्गरेज़ सरकार द्वारा माँग ली जाती हैं। इस विभाग में प्रतिवर्ष लगभग ५ हज़ार से अधिक रुपये ख़र्च किये जाते हैं।

कुछ वर्ष हुए भारत-सरकार और बम्बई-सरकार ने अपने प्रतिनिधि बड़ौदा भेज कर इस विभाग की कार्य-प्रणाली की जाँच कराई थी।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि पिछले २५ वर्षों में बड़ौदा-राज्य में साधारण जनता को शिक्षित और समुन्नत बनाने के लिए पुस्तकालय खोलकर आधुनिक साधनों का पूरा उपयोग किया गया है। इस उद्योग के फलस्वरूप वहाँ के निरक्षर लोगों की संख्या घटी है, साधारण ग़रीब किसानों की झोंपड़ियों में बाहरी दुनिया के ज्ञान की प्रकाश-किरणें पहुँचने लगी हैं और नवयुग का नव्य सन्देश सुनकर किसानों ने आँखें खोल दी हैं। इस दशा में वे अपनी हीन दशा का अन्त कर देने के लिए दिन पर दिन कितने प्रयत्नशील होते जायँगे, इसका अन्दाज़ लगाना कठिन नहीं है।

८—लड़कियों की शिक्षा का प्रश्न

भारतीय लड़कियों की शिक्षा का प्रश्न, देश के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका समुचित रूप से हल हुए बिना देश की सर्वतोमुखी उन्नति हो ही नहीं सकती। क्यों? इसलिए कि, नारी-समाज के अन्धकार में पड़े रहने से, देश का आधा अङ्ग पङ्गु बना रहेगा। जिस प्रकार एक स्त्री और पुरुष की सर्वतोमुखी उन्नति पर एक घर और परिवार का भविष्य निर्भर होता है उसी प्रकार स्त्री और पुरुष-समाज पर समूचे देश का भविष्य या जीवन-मरण की समस्या निर्भर होती है। व्यक्तियों और परिवारों के बहुसंख्यक समूहों के सम्मिलन ही से तो एक देश बनता है? यदि हमारे देश का प्रत्येक व्यक्ति, स्त्री और पुरुष अपने जीवन का शिक्षा, संस्कृति, अर्थ, नीति, सदाचार आदि की दृष्टि से उन्नत बना ले, तो समूचे देश को अधोगति के गर्त्त से निकलने में कितनी देर लगेगी? व्यष्टि के सुधार ही से समष्टि का सुधार होता है। इस तत्त्व को, व्यष्टि और समष्टि के एकीकरण के सिद्धान्त को, आधुनिक युग के बड़े से बड़े समाज-शास्त्री तक मानते हैं। देश की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए लड़कियों की शिक्षा भी उतनी ही आवश्यक और उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी कि लड़कों की शिक्षा। लड़के और लड़कियाँ, दोनों ही देश के भावी जीवन के कर्णधार हैं। दोनों ही की उन्नति पर देश की उन्नति निर्भर है। यह कहना भी अप्रासङ्गिक न होगा कि लड़कों की शिक्षा की अपेक्षा लड़कियों की शिक्षा अधिक आवश्यक और अधिक महत्त्वपूर्ण है इसलिए कि लड़कियों को आगे चल कर माता के रूप में गुरु के उस पवित्र आसन पर बैठना है, जो प्रकृति की ओर से सृष्टि के आरम्भ ही से उन्हें मिलता चला आया है।

प्राचीन भारत में लड़कियों को ऊँची से ऊँची शिक्षा देने की प्रणाली प्रचलित थी। वैदिक और उपनिषद् काल में विश्वावरा, अदिति, गार्गी,

मैत्रेयी, अपाला, लोपामुद्रा आदि ऐसी बीसियों देवियों के नाम मिलते हैं, जिन्होंने अपनी दिव्य प्रतिभा और अनुपम ज्ञान के बल पर समाज में ऊँचे से ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया था। कितने ही वेद-मन्त्रों के ऋषियों के स्थान पर देवियों के नाम मिलते हैं, इसलिए कि सबसे पहले उन मन्त्रों को हृदयङ्गम करके उन्हीं ने उनकी व्याख्या की थी। उपनिषद् का याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी सम्वाद हमें इस बात का पता देता है कि प्राचीन काल में इस देश की स्त्रियाँ ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करती थीं, और वे बड़ी-बड़ी सभाओं में ब्रह्मज्ञान ऐसे उच्च विषय पर दिग्गज पण्डितों से वाद-विवाद भी करती थीं। इसके बहुत समय बाद में पैदा हुई लीलावती का ज्योतिष और गणित-ज्ञान तो आज तक देश को लाभान्वित कर रहा है। इन सब बातों से स्पष्ट है कि नारी-समाज को ऊँची से ऊँची शिक्षा देना प्राचीन काल ही से आर्य-सभ्यता और संस्कृति का एक मुख्य अङ्ग रहा है।

परन्तु आधुनिक भारत में स्त्री-शिक्षा की अवहेलना करके देश के नारी-समाज को बिल्कुल पंगु बना दिया गया है। शिक्षा की अवहेलना से देश की स्त्रियों का सार्वजनिक जीवन तो निर्जीव है ही, उनका घरेलू जीवन भी बिल्कुल निकम्मा है। हमारे घरों की चहारदीवारी के अन्दर रूढ़ि-ग्रस्ता स्त्रियों के रूप में हाड़-मांस के ढेर पड़े हुए सड़ रहे हैं और उसकी दुर्गन्ध तथा उससे पैदा हुए कीटाणु समूचे भारतीय समाज को सड़ा रहे हैं, पर हमारे कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। स्त्रियों की शिक्षा की भारतीय समाज और सरकार दोनों ही ने उपेक्षा की है। इसलिए करोड़ों स्त्रियों को निरक्षर, मूर्ख और कूपमण्डूक बनाये रखने के लिए जनता और सरकार दोनों ही ज़िम्मेदार हैं। स्त्री-शिक्षा की समस्या हल हुए बिना किसी भी दिशा में यह देश आगे बढ़ नहीं सकता। स्त्रियों के रूप में देश की आधी आबादी का दिल और दिमाग़ बर्बाद करके राष्ट्रीय उन्नति की डींग मारना सचमुच एक ढकोसला नहीं तो क्या है? धरती पर जन्म लेने वाले मनुष्य के नाम के प्रत्येक जीवधारी को, स्त्री-पुरुष को, प्रकृति-दत्त अधिकार प्राप्त है कि उसे समय-समय पर अपने आपको विकसित करने, अपने आपको व्यक्त करने और अपने आपको बनाने के

लिए वे सभी साधन मिलते रहें, जिससे वह पूर्णता की ओर, विकास की चरम सीमा की ओर अग्रसर होता जाय। काल-चक्र की प्रगति के साथ, अपने-अपने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार जीवनक्षेत्र में सङ्घर्ष करते हुए पूर्णता को ओर अग्रसर होते रहना ही मानवीय जीवन का पवित्रतम उद्देश्य है। सृष्टि के प्रारम्भ ही से प्रकृति-नटी के रङ्ग-मञ्च पर यही ताव काम कर रहा है। इस दशा में लड़कियों और स्त्रियों को मूर्खता के गर्त्त में गिराये रखना, उन्हें अन्धकार में डाले रखना अन्याय है और उतनी ही भयङ्कर भूल है जितनी कि लड़कों और पुरुषों को अज्ञान के गर्त्त में डाले रखना। स्त्री-शिक्षा की समस्या ऐसी नहीं है, जो किसी भी तरह अनुपयुक्त ठहराई जा सके। यह समस्या तो देश को हल करनी ही पड़ेगी। इस समस्या को हल करने के लिए ऐसे स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय बनाने पड़ेंगे, जहाँ बैठ कर देश की अधिक से अधिक लड़कियाँ अपने जीवन के लिए, अपने परिवार और देश के कल्याण के लिए अधिक से अधिक उपयोगी और ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त कर सकें।

देश में ऐसे लोग बहुत हैं, जो पश्चिमी शिक्षा से इस देश की लड़कियों को बिल्कुल अलग रखना चाहते हैं। स्वयं हमारी राय में इस देश में आज-कल जो शिक्षाप्रणाली प्रचलित है वह बहुत दूषित और एकाङ्गी है। यह इस-लिए कि वर्तमान शिक्षा की बागडोर मुख्यतया देश के लोगों के हाथ में नहीं है। शिक्षा के नाम पर इस देश के अबोध लड़के और लड़कियों के सिर के ऊपर एक ऐसा भारी बोझ लाद दिया जाता है, जिसके कारण बचपन ही में उनकी बाढ़ मारी जाती है और उनके पुरुषत्व और नारीत्व का समुचित विकास नहीं होने पाता। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी हम इस बात को नहीं मानते कि पश्चिम की हर एक बात हमारे देश के लिए इसलिए अनुपयुक्त है कि वह पश्चिम की है। सच बात तो यह है कि ज्ञान न तो केवल पश्चिम की सम्पदा है और न पूरब की। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि हवा और सूरज के प्रकाश पर न तो केवल पूरब का अधिकार है और न पश्चिम का। इस देश की लड़कियाँ और स्त्रियाँ ज्ञान प्राप्त करने का उतना ही अधिकार रखती हैं

जितना कि कोई भी लड़के और पुरुष। हाँ, अपने लड़के और लड़कियों को शिक्षा देते समय हमें इस बात का पूरा ध्यान रखना होगा कि उनके चरित्र का निर्माण भारतीय संस्कृति और भारतीय आदर्शों की आधार-शिला पर हो। जिस शिक्षा से लड़के और लड़कियों के चरित्र का निर्माण भारतीय आदर्शों की आधार-शिला पर न हो, वह शिक्षा हमारे देश के लिए श्रेयस्कर नहीं हो सकती।

लड़के और लड़कियों की शिक्षा-प्रणाली का श्रीगणेश करते समय हमें अपने देश की परम्परा, आदर्शों और वर्तमान समस्याओं का ध्यान रखना ही पड़ेगा। ऐसा करते समय हमारा दृष्टिकोण संकुचित न होना चाहिए। हमारा मानसिक क्षितिज अधिक से अधिक व्यापक, ऊँचा, उदार और व्यावहारिक होगा, तभी हम अपने देश में अधिक से अधिक उपयोगी शिक्षा का प्रचलन करने में सफल हो सकेंगे। मानवीय विचार और उद्योग की समस्त दिशाओं में कोई भी देश सर्वोच्च आदर्शवाद का एकाधिकार नहीं रखता। कोई भी देश इस बात का ठेका नहीं ले सकता कि मानवीय ज्ञान की समस्त दिशाओं में केवल वही अकेला पूर्णता प्राप्त कर लेगा और बाक़ी दुनिया अज्ञान के गर्त्त में गिरी हुई उसके मुँह की ओर देखा करेगी। सच बात यह है कि सब देशों में स्त्री और पुरुष दोनों ही सदा उस सद्ज्ञान का आलोक पाने के पूर्ण अधिकारी रहे हैं, जिसकी सुनहली रश्मियाँ दूसरे सुदूरस्थ देशों को प्रकाशित करती रही हैं। इसलिए जब हम अपने भारतीय चरित्र का निर्माण कर रहे हों, तब हमारा सब से पुनीत और पहला कर्त्तव्य यह है कि हमारे अन्दर जो कमी हो, उसे दूसरे सुदूरस्थ देशों की अनुकरणीय अच्छी बातों को अपने अन्दर भर कर या उन्हें भारतीय जामा पहना कर, पूरी कर लें। दूसरों के जिन गुणों को ग्रहण कर हमारी कमज़ोरियाँ दूर हों, अथवा दूसरों के जो गुण हमारा चरित्र-निर्माण करने में सहायक हों, या दूसरों के जिन गुणों को अपनाकर हम सभ्य संसार के लोगों के कन्धे से कन्धा मिलाकर गौरव से ऊँचा मस्तक करके खड़े हो सकें, वे गुण हमें तुरन्त ही अपना लेने चाहिए। इसी कारण हमें अपने लड़के और लड़कियों की शिक्षा का प्रश्न हल करते समय संसार के समस्त

सभ्य, स्वतन्त्र और समुन्नत देशों की शिक्षा-प्रणालियों का अनुशीलन करना पड़ेगा, और उनमें जो खूबियाँ होंगी उन्हें अपने देश की आवश्यकताओं के अनुसार यहाँ की शिक्षा-प्रणाली में सम्मिलित करना पड़ेगा।

स्त्री और पुरुष के कार्य-क्षेत्र कुछ मामलों में सम्मिलित और कुछ मामलों में विभिन्न हैं। अपने देश और समाज की ज़रूरतों के अनुसार राजनैतिक, सामाजिक और सार्वजनिक मामलों में स्त्री और पुरुष दोनों ही कन्धे से कन्धा मिलाकर पारस्परिक सहयोग से काम कर सकते हैं। परन्तु फिर भी हमारे देश में स्त्री और पुरुष के मुख्य कार्य-क्षेत्र और कर्त्तव्य विभिन्न हैं। कुछ काम तो ऐसे हैं, जिन्हें केवल स्त्रियाँ ही कर सकती हैं, और कुछ ऐसे हैं जिन्हें पुरुष कर सकते हैं। अपना-अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए प्रकृति देवी की ओर से स्त्री और पुरुष दोनों ही को अलग-अलग नैसर्गिक अधिकार मिला है। सन्तान उत्पन्न करने और उसके यथोचित पालन-पोषण का काम केवल स्त्रियाँ ही कर सकती हैं, पुरुष नहीं। इसी कारण स्त्री को माता के ऊँचे और गौरव-पूर्ण पद पर बैठाकर संसार की सभ्य और असभ्य सभी जातियाँ उसके सामने मस्तक झुकाती हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि हमारे देश की लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा का आदर्श क्या होना चाहिए? उन्हें किस प्रकार की शिक्षा दी जाय, जिससे वे शिक्षित होकर अपने प्रतिष्ठित मातृ-पद के गौरव की रक्षा कर सकें, और साथ ही आवश्यकता पड़ने पर देश और समाज के सेवा-कार्य को भी अधिक से अधिक योग्यता के साथ सम्पादन कर सकें? मतलब यह है कि कोई भी लड़की आधुनिक विश्वविद्यालय में ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करके घरेलू और सार्वजनिक दोनों ही कामों के करने की पूरी योग्यता प्राप्त कर ले, और उसके दृढ़ चरित्र पर विशुद्ध भारतीय आदर्शों की छाप लग जाय।

संस्कृत के एक छोटे से वाक्य में कहा गया है—'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् विद्या वह है जो विमुक्त कर दे, आज़ाद बना दे। अथवा प्रसिद्ध विद्वान पत्रकार बाबू रामानन्द चटर्जी के शब्दों में आजकल की परिभाषा में यों कहेंगे

कि विद्या या वास्तविक ज्ञान वह है, जो आध्यात्मिक, बौद्धिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से मनुष्य को स्वतन्त्र बना दे। शिक्षा की यह परिभाषा, वास्तविक ज्ञान का यह अर्थ, बड़ा व्यापक है। इस अर्थ के अनुसार जो लड़का या लड़की, स्त्री या पुरुष, शिक्षा प्राप्त कर चुका हो, या सच्चे अर्थ में ज्ञानी बन गया हो, वह संसार के सारे बन्धनों से छूट जाता है। इस प्रकार की आदर्श शिक्षा प्राप्त किये हुए ज्ञानी व्यक्ति को बड़े से बड़े शक्तिशाली सत्ताधारी भी किसी बन्धन में बाँध कर नहीं रख सकते, अपना ग़ुलाम बना कर नहीं रख सकते। यह है भारतीय शिक्षा का विशुद्ध, उज्ज्वल और ऊँचा आदर्श, जो आज इन गिरे दिनों में भी संसार में प्रकाश-स्तम्भ का काम कर रहा है। यदि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को इस पुनीत आदर्श की कसौटी पर कसने बैठें तो हमें सचमुच निराश होना पड़ेगा। देश के कुछ इने-गिने व्यक्तियों को छोड़ कर ३५ करोड़ ग़ुलामों के झुण्ड में, आधुनिक दृष्टि से शिक्षा पाये हुए लोगों में कितने स्त्री-पुरुष ऐसे निकलेंगे जो आध्यात्मिक, बौद्धिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हों ? जो शिक्षा-प्रणाली, चाहे वह पच्छिम की हो या पूरब की, उत्तर की हो या दक्खिन की, हमारी लड़कियों और स्त्रियों को इस आदर्श की ओर नहीं ले जा सकती, उसके दोष-पूर्ण और दिवालिया होने में सन्देह ही क्या है ?

एक बार कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर हॉलैण्ड में एक महिला के यहाँ उसके मेहमान बनकर रहे थे। स्त्री-शिक्षा की समस्या पर बातें करते हुए उन्होंने उससे कहा था—

"Teach girls to realize that their greatest influence is the personal contact with their surroundings in the making of a home or in educating youth. Therefore they should be trained to give out freely and pleasantly what they were taught. The atmosphere of culture and light which is so created, is the centre

of beautiful home life. Great trouble should be taken to teach girls to express themselves in beautiful and simple language, to give out their knowledge and experience, and their wisdom, their thoughts, their dreams, their visions, The legends of the world are made eternal through woman's gift of story-telling. It is easier for children to learn through stories than through books. And so a cultured and beautiful home influence can be theirs through the gift of story-telling. The women who take care of the children of the world must be story-tellers, and so set free the children's own phantasy."

अर्थात्—"लड़कियों को यह अनुभव करना सिखा दो कि एक घर को बनाने या एक बच्चे को शिक्षा देने में, अपने आस-पास के वातावरण के साथ उनका जो व्यक्तिगत सम्बन्ध है उसी में उनका सब से बड़ा प्रभाव काम करता है। इसलिए उन्हें यह बात सिखा देनी चाहिए कि जो कुछ उन्होंने सीखा है उसे वे उदारतापूर्वक सहर्ष दूसरों को दे डालें। इस प्रकार बनाया हुआ संस्कृति और प्रकाश का वायुमण्डल सुन्दर घरेलू जीवन का केन्द्र है। लड़कियों को सुन्दर और सरल भाषा में अपने आपको व्यक्त करना, अपने ज्ञान, अनुभव, बुद्धिमत्ता, विचार, स्वप्न और कल्पनाओं का प्रचार करना—सिखाने के लिए अधिक परिश्रम करना चाहिए। संसार की पुरानी दन्त-कथाएँ और कहानियाँ स्त्रियों की कहानी कहने की प्रतिभा द्वारा अमर बना दी गई हैं। बच्चों के लिए पुस्तकों द्वारा सीखने की अपेक्षा कहानियों द्वारा सीखना अधिक सुगम है। इस प्रकार कहानी कहने की प्रतिभा द्वारा उनका एक संस्कृत और सुन्दर घरेलू प्रभाव हो सकता है। जो स्त्रियाँ संसार के बच्चों की परवा करती हैं उन्हें कहानी कहने वाली अवश्य होनी चाहिए, जिससे वे बच्चों के अपने निज के विचार स्वतन्त्र बना सकें।"

डॉ० रवीन्द्रनाथ के इन शब्दों में उनके उन विचारों का आंशिक रूप में स्पष्ट आभास है, जो वे भारतीय स्त्रियों की शिक्षा के सम्बन्ध में अपने हृदय में अनुभव करते हैं। इन विचारों को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए उन्होंने अपने शान्ति-निकेतन के विश्व-भारतीय विद्यालय में भरसक उद्योग किया है। उस विद्यालय को वे ऐसा बना देना चाहते हैं, जो ख़ास तौर से स्त्रियों के लिए उपयुक्त हो। वहाँ सह-शिक्षा का प्रचलन है। डॉ० ठाकुर वहाँ की शिक्षा को अधिक से अधिक वैज्ञानिक रूप दे रहे हैं। उनके विद्यालय का प्रत्येक विभाग समान रूप से स्त्री और पुरुष दोनों ही के लिए खुला है। खोज या अन्वेषण विभाग में भी स्त्रियाँ अपनी अभिरुचि के अनुसार खोज का कार्य करती हैं। हम डॉ० ठाकुर महोदय की शिक्षा-प्रणाली को ज्यों की त्यों बिलकुल निर्दोष नहीं मानते। पास से देखने पर उसमें भी त्रुटियाँ दिखाई पड़ सकती हैं। पर त्रुटियाँ कहाँ नहीं हैं? हमें तो किसी भी शिक्षा-पद्धति की उपयोगी बातों और उसके गुणों को ही अपनाना है। हमारा ख़याल है कि भारतीय वातावरण में सह-शिक्षा का पौधा नहीं पनप सकता। परन्तु इसका यह अर्थ हर्गिज़ नहीं है कि विश्व-भारतीय की वैज्ञानिक शिक्षा में, वहाँ के पाठ्य-क्रम में, जो बातें लड़कियों के लिए उपयोगी सिद्ध हों वे अपनाई न जायँ। संसार में आजकल एक से एक बढ़ कर शिक्षा सम्बन्धी वैज्ञानिक प्रयोग हो रहे हैं। विश्व-भारतीय की शिक्षा-पद्धति का जन्म भी प्रयोगों के आधुनिक युग में हुआ है। इस दशा में अभी यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ की शिक्षा-पद्धति ज्यों की त्यों समूचे भारतीय नारी समाज के लिए कहाँ तक श्रेयस्कर सिद्ध होगी।

लड़कियों की शिक्षा के सम्बन्ध में डॉ० ठाकुर के उपर्युक्त विचार बड़े महत्वपूर्ण हैं। वे कहते हैं कि लड़कियाँ सुन्दर और सरल भाषा में अपने आपको व्यक्त करना तथा अपने अनुभव और ज्ञान का प्रचार करना सीखें। परन्तु दुर्भाग्य से इस देश के लड़के और लड़कियों दोनों ही के ऊपर विदेशी भाषा अङ्गरेज़ी का बोझ लदा हुआ है। इस कारण वे अपने जीवन का बहुत सा बहुमूल्य समय खोकर भी सरल और सुन्दर भाषा में अपने आप को व्यक्त

करने की उतनी क्षमता प्राप्त नहीं कर पाते, जितनी की अपनी मातृ-भाषा द्वारा शिक्षा प्राप्त करके वे कर पाते। हमें इस बात का अनुभव है कि कॉलेज से बाहर आकर भारतीय युवक मातृ-भाषा में अपने विचार व्यक्त करने के लिए पहले अँगरेज़ी में सोचते हैं फिर उन्हें व्यक्त करने के लिए मातृभाषा में शब्द टटोलते फिरते हैं। जब अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए उन्हें मातृभाषा में उपयुक्त शब्द नहीं मिलते और ठीक वाक्य नहीं बना पाते तब वे बुरी तरह छटपटाते हैं, ऐसा करते समय सचमुच उनका दम घुटता है। हमारे युवकों की यह दशा बड़ी दयनीय है। यदि उनकी शिक्षा का श्रीगणेश मातृभाषा के माध्यम द्वारा हुआ होता, और उसी के अनुसार उनके मानसिक क्षितिज का विकास होता, तो उन्हें विदेशी भाषा में सोचे हुए विचारों का अपनी भाषा में अनुवाद न करना पड़ता। बड़े-बड़े शिक्षा-मर्मज्ञों का यह मत है कि भारतीय बच्चों के ऊपर से भाषा की ग़ुलामी का बोझ जितनी जल्दी हट जाय उनके कल्याण के लिए उतना ही अच्छा है। लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा-पद्धति से अँगरेज़ी का माध्यम निकाल दिया जाय और उन्हें आरम्भ से अन्त तक ऊँचे से ऊँचे विषयों की शिक्षा मातृभाषा द्वारा दी जाय, इस विचार से कोई भी समझदार आदमी सहमत हुए बिना न रहेगा। लड़कियों और स्त्रियों में स्वतन्त्र रूप से अपने आपको सरल और सुन्दर भाषा में व्यक्त करने तथा उनमें कहानियों द्वारा अपने अनुभव और ज्ञान का प्रचार कर बच्चों को शिक्षा देने की कला का विकास तभी, हाँ, केवल तभी हो सकेगा जब विदेशी भाषा के माध्यम के दलदल में उन्हें आरम्भ ही से न फँसने दिया जाय। हाँ, स्त्री-शिक्षा के पाठ्यक्रम में अँगरेज़ी को दूसरी ज़बान की तरह स्थान ज़रूर दिया जाय। यह इसलिए कि संसार के अन्य स्वतन्त्र और समुन्नत देशों के संसर्ग में रहने और उनकी गति-विधि से परिचित होने के लिए अङ्गरेज़ी सीखना भी बहुत ज़रूरी है। परन्तु किसी भी दशा में अङ्गरेज़ी को मातृभाषा पर तरजीह नहीं दी जानी चाहिए। यदि देशी भाषाओं के माध्यम द्वारा लड़के और लड़कियों को शिक्षा दी जाने लगे, तो एक सिरे से दूसरे सिरे तक सर्वत्र देश की जनता में बिजली

की तरह ज्ञान की प्रकाश-किरणें फैल जायँगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

१८ दिसम्बर सन् १८६५ ई० तक अमेरिका के नीग्रो लोग गुलाम थे। वे ज़बर्दस्ती पकड़ कर लाये जाते और अमेरिका के बाज़ार में जानवरों की तरह बेच डाले जाते थे। उस समय न तो उनकी कोई वर्णमाला थी और न साहित्य। परन्तु उनके आज़ाद होने के ६५ वर्ष बाद उनकी आबादी का ८३·७ फ़ीसदी भाग साक्षर हो गया और सन् १९३० में उनमें से केवल १६·३ फ़ीसदी आदमी निरक्षर रह गये। इसके मुक़ाबिले में भारत की निरक्षरता पर दृष्टिपात कीजिए। भारतीय सभ्यता और साहित्य बहुत पुराना है। यहाँ की शिक्षा-प्रणाली भी बहुत प्राचीन थी। सर थॉमस मुनरो (Sir Thomas Munro) के कथनानुसार सन् १८१३ ई में भारत के प्रत्येक गाँव में एक स्कूल था। उनमें लड़के और लड़कियाँ दोनों ही शिक्षा पाते थे। सन् १९११ की गणना के अनुसार ३५,२८,३८,७७८ की आबादी में केवल २,८१,३१, ३१५ आदमी साक्षर हैं। इनमें बच्चों की संख्या भी शामिल है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि आज इस देश की समूची आबादी के ८ फ़ीसदी से कुछ कम आदमी साक्षर हैं और ९२ फ़ी सदी से कुछ ही अधिक संख्या निरक्षर लोगों की है। इस दशा में देश की साक्षर लड़कियों और स्त्रियों की संख्या तो अंगु-लियों पर गिनी जा सकेगी। आज यहाँ शिक्षा की यह अवस्था है, जब कि इस देश पर आधुनिक युग की अङ्गरेज़ ऐसी सभ्य जाति लगातार डेढ़ सौ वर्ष से अधिक समय तक शासन कर चुकी है। अमेरिका के हब्शी लोग ६५ वर्ष में ८३·७ फ़ीसदी साक्षर हो गये और हिन्दुस्तानी डेढ़ सौ वर्ष से अधिक समय में ८ फ़ीसदी से भी कम साक्षर हो पाये। जिनके आँखें हों वे यहाँ गुलामी और आज़ादी की दशा का स्पष्ट अन्तर देख लें !!

इस दशा में अभी तक लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा और साक्षरता की दृष्टि से हमारा देश बिल्कुल दिवालिया है। कलकत्ता, बम्बई, मदरास आदि देश के कुछ बड़े-बड़े शहरों के सरकारी हाई-स्कूलों और कालेजों में लड़कियों

को विदेशी भाषा द्वारा एकाङ्गी सह-शिक्षा देने ही से नारी-समाज की देश-व्यापी आवश्यकता पूरी नहीं होगी। यहाँ तो देश की ज़रूरतों के अनुसार ऐसी उपयोगी शिक्षा प्रणाली प्रचलित करनी पड़ेगी जिसके प्रभाव से सुदूरस्थ गाँवों में बैठी हुई अपढ़-कुपढ़ किसानों की लड़कियों और स्त्रियों तक के हृदय में नये युग का नव्य सन्देश और ज्ञान की प्रकाश-किरणें जा पहुँचें। इसके लिए गाँवों, क़स्बों और शहरों में ज़िला और म्यूनिसिपैल्टी के अन्तर्गत खुली हुई कन्या-पाठशालाओं का विस्तार करना होगा। जो कन्या-शालाएँ द्रव्याभाव के कारण अच्छी दशा में नहीं चल रही हैं उन्हें पर्याप्त आर्थिक सहायता देकर लड़कियों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का यथोचित प्रबन्ध करना होगा। देश भर में एक सिरे से दूसरे सिरे तक ऐसी कन्या-पाठ-शालाओं का जाल फैला दिया जाय जिनमें लड़कियों को निःशुल्क अनिवार्य प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा दी जा सके, तो केवल दस-पन्द्रह वर्ष में स्त्री-शिक्षा की काया ही पलट जायगी। जहाँ सरकारी कन्या-पाठशालाएँ न हों, वहाँ उदारमना धनी-मानी सज्जनों के योग से लड़कियों के लिए सार्वजनिक स्कूल खोले जायँ तो इस काम में बड़ी सहायता मिलेगी। लड़कियों की प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा के काम में जो धन व्यय किया जायगा, वह व्यर्थ न जायगा, इसमें शक नहीं। देश में लड़कियों की प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का विस्तार हो जाने पर उच्च शिक्षा के लिए ऐसा विस्तृत क्षेत्र तैयार हो जायगा जिसमें आगे चल कर कितने ही बड़े-बड़े विश्वविद्यालय खड़े किये जा सकेंगे। परन्तु ऐसा तभी हो सकता है जब सरकार और जनता दोनों ही अपनी उपेक्षा के उस भाव को दूर कर दें जो वे अब तक इस ओर दिखाती रही हैं। अधिक से अधिक समय, शक्ति और ध्यान देकर ही भारतीय नारी-समाज की शिक्षा की समस्या हल हो सकती है, अन्यथा नहीं। हम जानते हैं कि करोड़ों अपढ़-कुपढ़ लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा के काम में अनेक प्रकार की रुकावटें हैं, परन्तु यदि हमें भारतीय जाति को जीवित रखना है, तो प्रत्येक दशा में अपना सब कुछ देकर भी, यह समस्या हल करनी ही पड़ेगी।

स्त्रियों का कार्यक्षेत्र

संसार के अन्य देशों में तथा भारत में, स्त्री-शिक्षा की वर्तमान प्रगति को देखते हुए यह निश्चय है कि सार्वजनिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में स्त्री और पुरुष दोनों ही एक सम्मिलित कार्यक्षेत्र में कन्धे से कन्धा मिल कर काम करेंगे। देश की आवश्यकताओं के अनुसार उनका वह सम्मिलित कार्यक्षेत्र अधिकाधिक व्यापक होता जायगा। यह सब होते हुए भी, मानव समाज के अस्तित्व के लिए स्त्रियों का मुख्य कार्यक्षेत्र परिवार और घर के भीतर बनाना पड़ेगा। ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करके भी देश की लड़कियाँ और स्त्रियाँ अपने मुख्य कार्यक्षेत्र की, पारिवारिक और घरेलू ज़िम्मेदारियों की तनिक भी उपेक्षा नहीं कर सकतीं। इसलिए भारतीय नारी-समाज की शिक्षा का सबसे पहला और मुख्य उद्देश यह होना चाहिए कि लड़कियाँ और स्त्रियाँ अपने घर और परिवार के कामों के लिए अधिक से अधिक योग्य और उपयुक्त बन सकें। शिक्षित होकर वे वास्तव में गृहिणी के गौरव-पूर्ण पद पर आसीन हो सकें। इसका यह अर्थ हर्गिज़ नहीं है कि उनका कार्यक्षेत्र केवल घर की चहारदीवारी तक ही सीमित रहे। अपनी घरेलू ज़िम्मेदारियों को पूरा को पूरा करते हुए भी वे आवश्यकतानुसार देश के सार्वजनिक कामों में सहर्ष भाग ले सकती हैं। हाँ, घर के लोगों में इतनी उदारता ज़रूर होनी चाहिए की वे स्त्रियों कि उन्नति के मार्ग में तनिक भी बाधा न डालें। देश की लड़कियाँ व्यावहारिक गृहविज्ञान, चिकित्सा-शास्त्र, शिशु-पालन, धातृ-विद्या, जनन-विज्ञान, गृह-शिल्प, गृह-निर्माण, शिशु-शिक्षा आदि उपयोगी विषयों का गम्भीर अध्ययन कर अपने परिवार, समाज और देश की बहुत बड़ी सेवा कर सकती हैं। स्त्रियों के गुप्त रोगों की विशेषज्ञ और चिकित्सिका बन कर तो वे देश के समूचे नारी-समाज की अद्वितीय सेवा कर सकती हैं। हमारा खयाल है कि स्त्रियों के बच्चों के रोगों के निदान और उनकी चिकित्सा के लिए वैद्य और डॉक्टरों की अपेक्षा स्त्री-चिकित्सिका ही अधिक उपयुक्त और सफल सिद्ध होंगी। स्त्रियों के लिए गृह-निर्माण-कला

का ज्ञान इसलिए ज़रूरी है कि वे अपना घर बनाते समय उपयुक्त स्थान, स्वास्थ्य, प्रकाश, वायु आदि बातों का पूरा ध्यान रक्खें, और घर का ढाँचा आदि बनाने में अपनी सुविधाओं के अनुसार पुरुषों का हाथ बँटावें।

स्त्री और पुरुष दोनों ही के रूप में परम पिता के उत्कृष्ट रचना-कौशल की झलक है। दोनों ही समाज के आवश्यक अंग हैं। कोई किसी से बड़ा-छोटा नहीं है। दोनों ही के ऊपर सृष्टि के क्रम-विकास की आवश्यक समस्या निर्भर है। दोनों ही एक दूसरे से मिलकर पूर्णता की ओर अग्रसर होते हैं। इस दशा में दोनों में झगड़ा कैसा ? यदि सचमुच दोनों ही मिलकर अपने घर और परिवार के उत्तरदायित्व सुचारु रूप से सँभाल लें, और दोनों ही समझदारी से अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहें, तो कल ही भारतीय घरों में स्वर्गीय सुख और शान्ति छा जाय और इस प्रकार घरों और परिवारों की सुख-शान्ति से समूची भारत वसुन्धरा पर अमृत की वर्षा होने लगे। भारतीय लड़के-लड़कियों की शिक्षा का आदर्श कर्त्तव्य की आधार-शिला पर दृढ़ होना चाहिए, न कि कोरे अधिकार-वाद पर। आरम्भ ही से लड़कियों को पवित्रता, सत्याचरण, सहनशीलता, कर्त्तव्यपरायणता आदि सद्गुणों की ओर प्रेरित करने का परिणाम यह होगा कि वे आगे चल कर सुयोग्य गृहिणी बन सकेंगी। भारतीय घरों की देवियाँ आज भी अपने घरों के कार्य-क्षेत्र में निरत रह कर माता के रूप में सचमुच ऐसी ठोस और बहुमूल्य सेवा करती हैं जिससे समूचे राष्ट्र की रीढ़ मज़बूत होती है। वे निरक्षर, ग़रीब और भूखी होते हुए भी आदर्श-चरित्र और कर्त्तव्यपालन के दुर्लभ गुणों में अपना सानी नहीं रखतीं। वे घोर आपदाओं में घिरी रहकर भी अपने कर्त्तव्य से च्युत होना नहीं जानतीं। वे आज आधुनिक विज्ञापन के युग से कोसों दूर हैं, परन्तु राष्ट्र-निर्माण के कामों में उनकी बहुमूल्य सेवाओं का जो मूल्य है, उसका अनुमान देश के भावी इतिहास के लेखक उन दृढ़ चरित्र के युवाओं के खिलते हुए मुखड़ों को देखकर लगा सकेंगे जो आज शिशुओं के रूप में अपढ़-कुपढ़ माताओं की गोद में खेल रहे हैं। देश के अधिकांश किसान-मज़दूरों की

देवियों की गोद में आज जो बालक और बालिकाएँ खेल रही हैं, और जिन्हें वे कड़ी से कड़ी विपत्ति सह कर भी, मिहनत-मज़दूरी करते समय, अपने अन्त-स्तल की निकली हुई आवाज़ से करुण-गान गाती हुई कलेजे से चिपका कर रखती हैं, उनका स्वतन्त्र भारत के इतिहास में क्या स्थान होगा, इसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह बात तो भविष्य के गर्भ में निहित है, इस समय तो हमें यह कहना है कि हमारी अपढ़-कुपढ़ और निरक्षर बहिनों और माताओं ने अपना सब कुछ खोकर भी, कड़ी से कड़ी आपदाएँ सहकर भी, अपने दृढ़ और उज्ज्वल चरित्र के बल पर उन ऊँचे भारतीय आदर्शों की रक्षा की है, जिनके लिए मेवाड़ की अगणित वीरबालाएँ अपने पुनीत विश्वासों के बल पर बलि चढ़ चुकी हैं, और जिनके लिए देवी मीरा, दुर्गावती और भारतीय नारीत्व की अन्तिम ज्वलन्त ज्योति महारानी लक्ष्मीबाई के अमर गीत आज भी इस देश के घर-घर में गाये जाते हैं। हम चाहते हैं कि देश की लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा का प्रश्न हल करते समय, उनके लिए वैज्ञा-निक ढङ्ग पर नई नई शिक्षा-पद्धति बनाते समय, हम इन पुनीत आदर्शों की तनिक भी उपेक्षा न करें, जिससे पढ़-लिख कर भारतीय देवियों का दृढ़ और उज्ज्वल चरित्र स्फटिक मणि की तरह दूर ही से चमकता हुआ दिखाई पड़े और शिक्षिता देवियों का चरित्र-निर्माण बड़ी दृढ़ता से हो सके। पढ़-लिख कर वे सरलता, सादगी, मृदुलता, सौम्यता, विनम्रता, कर्त्तव्य-परायणता, सेवा-भावना आदि सद्‌गुणों की प्रतिमूर्ति दिखाई पड़ें, जिससे उनके सामने पहुँच कर किसी भी व्यक्ति का मस्तक श्रद्धा से आप ही आप उनके चरणों पर झुक उठे। कहने का मतलब यह है कि उनके चरित्र में किसी तरह की ढिलाई न हो। इस प्रकार की आदर्श चरित्र की शिक्षिता स्त्रियों को पाकर देश का मस्तक गौरव से सचमुच ऊँचा हो उठेगा और समाज के लोगों में फैली हुई इस भ्रम-पूर्ण धारणा का अन्त हो जायगा कि पढ़-लिख कर लड़कियाँ बिगड़ जाती हैं। जिस शिक्षा और ज्ञान से देश की लड़कियों और स्त्रियों का आत्मविकास हो, किन्तु विनाश नहीं, वही शिक्षा उनके लिए तथा उनके परिवार और समाज के लिए श्रेयस्कर होगी।

बालिग़ स्त्रियों की शिक्षा

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा से संसार के प्रायः सभी स्वतन्त्र और समुन्नत देशों ने अपने बच्चों की शिक्षा की समस्या हल कर ली है। इङ्गलैण्ड में तो बालिग़ स्त्रियों की शिक्षा के लिए भी एक बहुत ही उत्तम और व्यावहारिक शिक्षा-प्रणाली का प्रचलन है। १६वीं शताब्दी के आरम्भ में अनेक मामलों में इङ्गलैण्ड की दशा भारत की वर्तमान दशा से मिलती-जुलती थी। वह इङ्गलैण्ड का सन् १८०० से १८५० के बीच का राजनैतिक अशान्ति का समय था। उसी अशान्ति ने चार्टिस्ट आन्दोलन (Chartist agitation) और सन् १८३२ के रिफ़ार्म एक्ट (Reform Act) को जन्म दिया। उसी अशान्ति के फल-स्वरूप वहाँ औद्योगिक क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ था। उन दिनों अङ्गरेज़ समाज में पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों की संख्या बहुत थोड़ी थी। परन्तु वहाँ लोगों में ज्ञान-पिपासा जागृत हो चुकी थी। इङ्गलैण्ड के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सर्वत्र शिक्षा की चाह थी। वतमान भारत की तरह, वहाँ भी उन दिनों राजनैतिक और शिक्षा सम्बन्धी समस्या हल करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक था कि देश के अधिक से अधिक लोगों में साक्षरता बढ़े। बस, जनता की इसी चाह से इङ्गलैण्ड में बालिग़ स्त्री-पुरुषों की शिक्षा का प्रयोग आरम्भ हो गया। धार्मिक शिक्षा आरम्भ की गई। निरक्षर स्त्री-पुरुष सभी के हाथों में बाइबिल दिखाई देने लगी। धीरे-धीरे शिक्षा का रूप अधिकाधिक व्यापक और विकसित होता गया। बाइबिल से आगे चल कर पाठ्य-क्रम में शारीरिक शिक्षा को स्थान मिला और फिर कल-पुर्ज़ों की वैज्ञानिक शिक्षा को। सन् १८१५ से १८५० तक डॉ० ज्यौर्ज बर्क बैक के प्रोत्साहन से इंगलैंड में कल-पुर्ज़ों की वैज्ञानिक शिक्षा देने वाली शिक्षा-संस्थाओं का एक बड़ा जाल-सा फैल गया। सन् १८५१ में इस प्रकार की शिक्षा-संस्थाएँ इङ्गलैण्ड में ६१० थीं, जिनमें लगभग ६ लाख से अधिक स्त्री-पुरुष उद्योग-धन्धे और कल-पुर्ज़ों की शिक्षा प्राप्त करते थे। सन् १८८० में वहाँ प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य तथा सन् १८६१ के ऐक्ट के अनुसार निःशुल्क कर दी गई थी।

धीरे-धीरे वहाँ किसान और मज़दूर स्त्री-पुरुषों तक में शिक्षा का प्रसार हो गया। आज तो इङ्गलैण्ड में मज़दूर स्त्रियों का कॉलेज (London Working Women's College) संसार के सामने इस बात का साक्षी है कि वहाँ की मज़दूर स्त्रियाँ भी अंगरेज़-समाज में ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करके पुरुषों के समान ही जीवन-क्षेत्र में ऊँचा मस्तक करके पदार्पण करती हैं। बालिग़ स्त्री-पुरुषों की निरक्षरता दूर करने से इङ्गलैण्ड को अपनी राजनैतिक और सामाजिक समस्याएँ सुलझाने में कितनी सहायता मिली, यह आज दुनिया के सामने स्पष्ट है। हमें चाहिए कि इङ्गलैण्ड की इस शिक्षा-पद्धति से जो कुछ लाभ उठा सकते हैं वह ज़रूर उठावें। यह ठीक है कि वहाँ सह-शिक्षा का प्रचलन होने से समूचे देश की शिक्षा-समस्या आसानी से हल हो गई। ख़र्च भी कम पड़ा और बालिग़ स्त्री-पुरुषों की निरक्षरता दूर होने में समय भी कम लगा। हमारे देश की वर्तमान स्थिति में बालिग़ स्त्रियों की शिक्षा के लिए इङ्गलैण्ड की अपेक्षा कहीं अधिक कठिनाइयाँ पड़ेंगी। परन्तु कठिनाइयाँ किस काम में नहीं होतीं? कठिनाइयों के डर से देश के स्त्री-शिक्षा-प्रेमी क्या हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे?

हमारे देश में लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा के लिए जितनी अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता है, उतनी ही, बल्कि उससे भी अधिक, बालिग़ स्त्रियों की शिक्षा की आवश्यकता है। क्यों? इसलिए कि इस देश में आज जो करोड़ों अपढ़-कुपढ़ स्त्रियाँ समाज के ज़ुल्मों से तंग आकर दर-दर की ख़ाक छानती फिरती हैं वे क्या करें? कहाँ जायँ? उनके लिए कोई काम नहीं है, कोई धन्धा नहीं है। इस दशा में यदि देश में स्थान-स्थान पर ऐसी शिक्षा-संस्थाएँ खोली जायँ, जहाँ आश्रय पाकर पढ़-लिख सकें और समाज-सेवा के लिए उपयोगी और आवश्यक बातें सीख सकें तो, सचमुच भारतीय नारी-समाज का आत्मोद्धार होने में देर न लगेगी। प्रयाग का महिला-विद्यापीठ इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रहा है। यहाँ देश के आन्ध्र, मदरास आदि सुदूरस्थ प्रान्तों की स्त्रियाँ आकर शिक्षा प्राप्त करती हैं। परन्तु देश भर में इस प्रकार के महिला-विद्यापीठ कितने हैं?

रूस की आज कायापलट हो रही है। अपने राजनैतिक, सामाजिक तथा अन्य दोषों को दूर करने के साथ ही, रूस के नागरिक स्त्रियों की निरक्षरता दूर करने में भी दत्तचित हैं। देश भर में शिक्षा-संस्थाएँ खोल दी गई हैं। उनमें लड़के-लड़कियाँ दोनों ही अपनी-अपनी अभिरुचि के अनुसार ज्ञानार्जन करते हैं। बालिग़ और सयानी स्त्रियों की शिक्षा पर वहाँ विशेष ध्यान दिया जा रहा है। अमेरिका के 'न्यू रिपब्लिक' नाम के प्रसिद्ध अख़बार के एक प्रतिनिधि मि० वाल्डो फ्रेंङ्क (Waldo Frank) हाल ही में रूस गये थे। एक स्कूल का निरीक्षण करते समय उन्होंने वहाँ पढ़ने वाली एक लड़की से कुछ बातें कीं। लड़की ने भी अमेरिका की लड़कियों के सम्बन्ध में उनसे बहुत से प्रश्न किये।

"अमेरिका की लड़कियाँ क्या करती हैं?"—रूसी लड़की ने पूछा।

"जब उनके पास काम होता है तब वे ऑफ़िसों और कारख़ानों में काम करती हैं।"

"जब वे कुछ करना चाहती हैं तब क्या करती हैं?"

"वे अपना मनोरंजन करती हैं।"

"वे अपना मनोरंजन किस प्रकार करती हैं?"

"वे नाच और सिनेमा में जाती हैं, मज़े में खाती-पीती और आमोद-प्रमोद करती हैं।"

"क्या उनके पास ऐसा कोई काम नहीं है, जिससे वे अपना मनोरंजन कर सकें?"

"आमतौर पर नहीं, इसमें मुझे सन्देह है।"

"वे काम क्यों करती हैं?"

"रुपया कमाने के लिए।"

"वे रुपये का क्या करती हैं?"

"वे उसे अपने ऊपर ख़र्च करती हैं।"

"अपने सिवा वे और किसी चीज़ का ख़याल नहीं करतीं?"

"अक्सर नहीं।"

"वे क्यों खयाल करती हैं कि वे जीवित हैं?"

"अच्छा समय पाने के लिए।"

बस, इस पर वह चतुर रूसी लड़की चुप हो गई। अमेरिकन लड़कियों के आमोद-प्रमोद के जीवन की बातें तनिक भी उसकी समझ में न आईं। उसकी आँखें स्पष्ट कह रही थीं कि इस प्रकार आमोद-प्रमोद करने वाली अमेरिकन लड़कियाँ अपने समाज और देश के लिए बिलकुल निकम्मी हैं। अन्त में मि० वाल्डो फ्रेङ्क ने भी उस लड़की से एक बात पूछ ली।

उन्होंने पूछा—जब तुम भोजन बनाने या चिकित्सा-शास्त्र अध्ययन करने का अपना काम समाप्त कर चुकती हो, तब अपनी छुट्टी का फ़ालतू समय कैसे बिताती हो? तब तुम निश्चय ही अपना मनोरंजन करती होगी? लड़की झट से बोल उठी—"निश्चय ही मैं उस दशा में अपना मनोरंजन करती हूँ। अपनी छुट्टी के समय प्रत्येक रात को मैं निरक्षर माताओं की कक्षा में जाकर उन्हें अक्षर-ज्ञान कराती हूँ।" इस प्रकार रूसी स्कूल में पढ़ने वाली वह लड़की अपनी छुट्टी के समय प्रत्येक रात को एक घण्टे अपनी निरक्षर माताओं को पढ़ा कर, तथा बाद में अपनी पार्टी की मीटिङ्ग में सार्वजनिक समस्याओं पर विचार करके अपना मनोरंजन करती है। रूस की पञ्चवर्षीय आयोजना से तो वहाँ के बहुत से निरक्षर स्त्री-पुरुष साक्षर हो गये हैं।

प्रश्न यह है कि हम अपने देश की स्त्रियों की निरक्षरता दूर करने के लिए क्या कर रहे हैं? इसका उत्तर नहीं के सिवा और क्या है? जब अपने देश की जनता और उसके सार्वजनिक जीवन के कर्णधार ही लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा का गुरुतर उत्तरदायित्व अनुभव करके, इस दिशा में कोई व्यावहारिक ठोस काम नहीं कर रहे अथवा इस प्रश्न को उपेक्षा की दृष्टि से देख रहे हैं, तब जो इस देश के भाग्य-विधाता हैं, वे क्यों न कान में तेल डाल कर बैठे रहेंगे!

६—बौद्ध-धर्म में स्त्रियाँ

सृष्टि के आरम्भ से आज तक विश्व के रङ्ग-मञ्च पर कितने पट-परिवर्तन हुए, इसका ठीक-ठीक लेखा वही व्यक्ति बता सकता है, जिसने संसार के क्रम-विकास के इतिहास का बड़ा गहरा और सिलसिलेवार अध्ययन किया हो। आज तक हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध और ईसाई आदि संसार के प्रसिद्ध धर्मों के नामों से पुकारी जाने वाली जितनी विचार-धाराओं का प्रचलन हुआ है, उनमें बौद्ध-धर्म का अपना एक विशेष स्थान है। आज से लगभग २५०० वर्ष पहले राजकुमार सिद्धार्थ के रूप में भारत-वसुन्धरा की गोद में एक अभिनव विभूति का आविर्भाव हुआ था। उस विभूति का, जिसने राजसी सुख-समृद्धि से ऊपर उठकर, दीन-दुखी और सन्तप्त मानव-समाज के कल्याण के लिए भूतल पर वह अनुपम अमृत-वर्षा कर दी, जिससे अखिल विश्व का धराधाम धन्य हो गया। गौतम बुद्ध के द्वारा जिस मानव-धर्म का प्रचार हुआ, उसमें ऊँच-नीच की भावना का नाम तक न था, किसी श्रेणी या समुदाय-विशेष की उच्चता या प्रभुता के भाव की गन्ध तक नहीं थी। यही कारण था कि उस सार्वभौमिक बौद्ध-धर्म के दिव्य ज्ञान की प्रकाश-किरणों से एक बार प्रायः समस्त भूमण्डल आलोकित हो उठा। आज हम इस लेख में इस बात पर प्रकाश डालने बैठे हैं कि जो बौद्ध-धर्म भारत-वसुन्धरा की गोद में आविर्भूत हुआ और भारत से बाहर चीन, जापान, ब्रह्मा, स्याम आदि दूरस्थ देशों में खूब फला-फूला, उसमें स्त्रियों का क्या स्थान था और आजकल बौद्धों के समाज में स्त्रियों को क्या-क्या अधिकार प्राप्त हैं, वे किस प्रकार अपना जीवन यापन करती हैं?

बौद्ध धर्म में त्याग और विराग का स्थान मुख्य है, भोग का नहीं। बहुत से ईसाई धर्म-गुरुओं ने अनेक स्थलों पर स्त्रियों को बुरा-भला कह डाला है। परन्तु बौद्ध धर्म स्त्रियों की निन्दा नहीं करता। हाँ, बौद्ध धर्म में लोगों को यह सलाह ज़रूर दी गई है कि स्त्रियों के खतरे से बचे रहो, पर साथ ही यह भी कहा गया है कि खतरा स्त्रियों के किसी अपराध के कारण पैदा नहीं होता।

खतरे के लिए तो पुरुष स्वयं ही उत्तरदायी हैं। बौद्ध धर्म के 'चार सत्य' प्रसिद्ध हैं। उनमें बताया गया है कि जो व्यक्ति इस धर्म का अनुयायी है उसके विचार में स्त्रियों से मिलना-जुलना और उनके साथ मिल कर प्रायः सभी सांसारिक अनुभव प्राप्त करना सर्वथा उच्च और आदर्श जीवन नहीं है, बल्कि वह तो समझता है कि स्त्रियों से अलग रह कर, यदि सम्भव हो तो उनसे किसी भी दशा में न मिल कर और उनके साथ सांसारिक अनुभव प्राप्त करके न रहना ही आदर्श जीवन यापन करना है।

बौद्ध धर्म-ग्रन्थों में कहा गया है—यह एक पवित्र और सत्य सिद्धान्त है—संसार में जन्म लेना दुःख है, वृद्धावस्था दुःख है, रोग पीड़ा है, जिससे प्रेम न हो उससे मिलना दुःख है, प्रेमी से बिछुड़ना कष्ट है, मृत्यु पीड़ा है, इच्छित वस्तुओं का न मिलना दुःख है, संक्षेप में हर प्रकार से इस पृथ्वी पर चिपके रहने में दुःख है।

दुःखों का मूल कारण है जीवित रहने की कामना। यही कामना भोग-लिप्सा और आकांक्षा के साथ मिल कर प्राणी को जन्म-जन्मान्तरों में ले जाती है और वह कभी वहाँ सुख पाती है कभी यहाँ। सुख की कामना, जीवित रहने की कामना और शक्ति प्राप्त करने की कामना ही वास्तव में जन्म-मरण के दुःखों का कारण है।

इच्छा को पूर्णतया मारकर ही, अपने आपको उससे बिल्कुल अलग रखकर, कामना का नाश होता है और कामना के नाश से दुःखों का अन्त हो जाता है।

जिस पथ पर चलकर दुःखों का अन्त होता है, उसके आठ साधन हैं—"सत्य विश्वास, सत्य निर्णय, सत्य वचन, सत्य काम, सत्य जीवन, सत्य प्रयत्न, सत्य विचार, और सत्य आत्म-एकाग्र-चित्तता, अथवा ठीक दिशा में अपना ध्यान जमाना या एकाग्रचित्त होना।"

अशोक के उस प्रसिद्ध राजकुमार कुणाल का, जिसकी आँखें निकलवा ली गई थीं, कहना है—

"जिन लोगों ने मुझे दुःख दिया है और जो मेरी प्रसन्नता का कारण है, उन सबके लिए मैं बराबर हूँ, मोह और द्वेष को मैं जानता ही नहीं। सुख और दुःख में मैं अविचल रहता हूँ; मान और अपमान सभी में मैं एकसा हूँ। यही मेरे चित्त की समता की पूर्णता है।"

बौद्ध-धर्म में भगवान् बुद्ध की उक्तियाँ, धार्मिक विधान आदि शामिल हैं। उन संस्थाओं और रीतिरिवाजों के साथ जिनका प्रचलन स्वयं उन्हीं के नाम पर हुआ है, स्त्रियों से सम्बन्ध रखने वाली बुद्ध की उक्तियाँ अधिक नहीं हैं। उन्होंने अपने भिक्षुओं को स्त्रियों से अलग रहने की सलाह दी है।

आनन्द नाम का भिक्षु बुद्ध का चचेरा भाई था। वह बौद्ध-धर्म की दीक्षा लेकर उनका शिष्य बन गया था। स्त्रियों के सम्बन्ध में एक बार उनमें इस प्रकार प्रश्नोत्तर चले थे—

आनन्द—स्त्रियों के सम्बन्ध में हम अपना कैसा व्यवहार रक्खें, स्वामिन् ?

बुद्ध—उन्हें देखो मत, आनन्द !

आनन्द—परन्तु यदि उन्हें देखना पड़े, तब हम क्या करें ?

बुद्ध—बहुत जागरुक रहो, आनन्द !

भगवान् बुद्ध की यह सम्मति थी उनके लिए, जो संसार त्याग चुके थे। बौद्ध-धर्म के साधारण अनुयायियों और गृहस्थों के लिए तो यह कर्त्तव्य निर्धारित किया गया था कि वे स्त्रियों के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार करें। स्त्री और पुरुष दोनों ही के लिए समान कर्त्तव्य पालन करने का उनका आदेश था।

सबसे उत्तम वरदान और सर्वोच्च आशीर्वादों के रूप में समस्त मानव-समाज के लिए भगवान् बुद्ध का आदेश था—

"माता-पिता की सेवा, पत्नी और बच्चों का सहवास तथा शान्तिपूर्ण उद्योग ही सर्वोच्च आशीर्वाद है !"

भगवान् बुद्ध ने प्रेम का विशुद्धतम और विशद रूप केवल माता के प्रेम ही में देखा था। उनका कहना था कि संसार में केवल मातृ-प्रेम ही अकपट और निस्वार्थ भावना लिये होता है, इसलिए कि, "माता अपने प्राणों की बाज़ी लगा कर भी पुत्र की रक्षा करती है।"

बौद्ध-धर्म में जहाँ पति-पत्नी के सम्बन्ध और उनके व्यवहार के लिए अनेक नियमोपनियमों की चर्चा की गई है, वहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि पत्नी के लिए आज्ञा-पालन की बात पर तनिक भी ज़ोर नहीं दिया गया। पतियों के लिए आदेश है कि वे अपनी पत्नियों के विश्वास-पात्र रहें, उनका आदर करें, और उन्हें यथोचित सुन्दर आभूषण और वस्त्र प्रदान करें। पत्नियों को पतिव्रत धर्म का आचरण करने और मितव्ययी बनने की शिक्षा दी गई है, इसलिए कि वे अपने घर-बार की ज़िम्मेदारियों को यथोचित रीति से सँभाल सकें। स्त्रियों से यह भी कहा गया है कि वे अपना घरेलू कर्त्तव्य पालन करने में यथोचित बुद्धिमत्ता और उद्योगशीलता दिखावें। परन्तु ईसाई सन्त पॉल की तरह स्वयं भगवान् बुद्ध का विचार यह था कि अविवाहित जीवन ही समूचे मानव-जीवन का उत्तम अंश है। इसी कारण उन्होंने एक बार अपने किसी शिष्य से कहा था—"बुद्धिमान् आदमी को विवाहित जीवन से यह ख़याल कर अलग रहना चाहिए, मानो वह (विवाहित जीवन) कोयले की आग से जलती हुई खान हो!"

आगे चल कर इसी सम्बन्ध में फिर उन्होंने कहा था:—

"विवाहित-जीवन, वासना से अपवित्र और बाधाओं से परिपूर्ण है। जो व्यक्ति घर में रहता है, वह अपने पूर्णतया विशुद्धतम रूप में ऊँचा जीवन कैसे व्यतीत कर सकता है?"

इन सब बातों से स्पष्ट है कि भगवान् बुद्धदेव की शिक्षाओं के अनुसार यही सर्वोत्तम है कि विवाह न किया जाय, किन्तु यदि कोई विवाह कर ले, तो दोनों ही जीवन-सहचरों में से प्रत्येक, अपने दूसरे साथी के लिए आदर-भाव रक्खे और उसका विश्वासपात्र बन कर रहे। बौद्ध-धर्म में पारिवारिक कर्त्तव्यों को निश्चित रूप से प्रथम और सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भगवान् बुद्ध के शब्दों में माँ-बाप अपने बच्चे के लिए अत्यन्त दुष्कर कर्त्तव्य का पालन करते हैं। वे उसका पालन-पोषण करते हैं। माँ अपने दूध से उसकी रक्षा करती है। इसी कारण वे दोनों ही उनके बच्चों के लिए साक्षात् ब्रह्म, गुरु और बलिदान की आग के सदृश हैं।

जब पहले पहल बौद्ध-धर्म के अनुयायी भिक्षुओं का संघ स्थापित हुआ, तब बुद्ध के पिता राजा शुद्धोदन ने उनसे प्रार्थना की कि इस भ्रातृ-संघ में अपने माँ-बाप की आज्ञा के बिना कोई भी व्यक्ति भरती न किया जाय।

बुद्ध-धर्म के अनुसार पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी संसार से विरक्त रह कर भिक्षुणी बन सकती हैं और मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रयत्न कर सकती हैं। निर्वाण प्राप्त करने के लिए उद्योग करने का स्त्रियों को भी उतना ही अधिकार प्राप्त है, जितना कि पुरुषों को। कहते हैं कि बुद्ध के जीवन-काल में ७३ स्त्रियों और १०७ पुरुषों ने निर्वाण प्राप्त कर मानव-जीवन के विकास की चरम सीमा तक पहुँचने का अपूर्व कौशल दिखाया था।

धर्म-प्रचार करने के लिए जब बौद्ध लोगों के संघ बने, तब स्त्रियों ने सबसे अधिक आर्थिक सहायता देकर अद्भुत उदारता का परिचय दिया था। इसके लिए स्वयं भगवान् बुद्ध ने विसाखा आदि अनेक स्त्रियों की त्याग-वृत्ति की बड़ी प्रशंसा की है। एक बार बुद्धदेव एक महिला के यहाँ पधारे। उसने उदारतापूर्वक बौद्ध-संघ के लिए उन्हें एक विशाल भवन प्रदान किया। उस दानशीला महिला के सम्बन्ध में उन्होंने अपने भिक्षुओं से कहा—

"यह महिला सांसारिक वातावरण में रहती है और राज-रानियों की कृपा-पात्री है, तो भी इसका हृदय स्थिर और शान्त है। अवस्था में युवा और धनी तथा सांसारिक सुख-ऐश्वर्य से घिरी हुई है, पर है यह विचारशीला और अपने कर्तव्य-पथ में अविचल। यह बात संसार में सचमुच दुर्लभ है।"

एक बार बुद्धदेव एक दूसरी महिला के घर पर पधारे। उसने अपने हाथ से उन्हें भोजन कराया। वे कहने लगे—

"एक उत्तम धार्मिक महिला, जो भूखों को भोजन देती है, वह उन्हें भोजन के साथ चार वस्तुएँ प्रदान करती है। वह जीवन-शक्ति देती है, सौन्दर्य प्रदान करतो है, आनन्द देती है और देती है बल। जीवन-शक्ति देने से वह मानवीय और दैवी जीवन-शक्ति की, सौन्दर्य देने से सौन्दर्य की, आनन्द से आनन्द की और बल से मानवीय और दैवी बल की साझीदार बन जाती है।"

बुद्ध ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने संसार में इस सार्वभौमिक और अमर सिद्धान्त की विजय-दुन्दुभी बजाई कि वास्तविक निर्वाण या उस सर्वोच्च पथ का ज्ञान, जो आदमी को संसार के गन्दे दलदल से ऊँचा उठा कर जीवन्मुक्त बना देता है, केवल ब्राह्मणों ही के लिए सुरक्षित नहीं है, बल्कि उसका राज-मार्ग समस्त जातियों के सब व्यक्तियों के लिए समान रूप से खुला है। इस सिद्धान्त के अनुसार निर्वाण प्राप्त करने के लिए स्पष्ट रूप से स्त्रियाँ भी उसी प्रकार अग्रसर हो सकती हैं जैसे कि पुरुष।

बुद्ध की माता और पत्नी ने उनसे प्रार्थना की कि भिक्षुओं की तरह भिक्षुणियों का भी एक संघ बना दिया जाय। बुद्धदेव ने अनिच्छापूर्वक इस प्रस्ताव पर सहमति प्रदान की, पर वे इस सिद्धान्त का खण्डन नहीं कर सके कि पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी निर्वाण-पथ की साधना के योग्य हो सकती हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि स्त्रियों के निर्वाण प्राप्त करने के मार्ग में कोई रुकावट नहीं है। इस पर भी बुद्ध ने कुछ ऐसे नियम बना दिए, जिनके अनुसार भिक्षुणियों को भिक्षुओं के सामने उत्तरदायी होना पड़ता था और उनके ऊपर भिक्षुओं की अपेक्षा कहीं अधिक कड़ा नियन्त्रण रक्खा जाता था। भिक्षुणियों को धर्मोपदेश सुनने के लिए भिक्षुओं के पास जाना पड़ता था। बौद्ध-संघ में कुछ भिक्षुणियाँ भी धर्म-प्रचार के काम में लग रही थीं। संघ में भिक्षुणियाँ भिक्षुओं की अपेक्षा कम थीं, परन्तु फिर भी उनका कार्यक्षेत्र अधिकाधिक व्यापक होता गया और उन्हें अपने काम में पर्याप्त सफलता भी मिली। कहा यह जाता है कि बुद्धदेव ने यह भविष्य-वाणी की थी कि संघ में स्त्रियों के सम्मिलित हो जाने का परिणाम यह होगा कि ५०० वर्ष के भीतर लोग धार्मिक नियमोपनियमों को भूल जायँगे। उन्होंने स्पष्ट कहा था—

"किसी भी मत, सिद्धान्त या अनुशासन के अनुसार, जहाँ स्त्रियों को गार्हस्थ्य जीवन से निकल कर गृह-विहीन दशा में रहने की इजाज़त दे दी गई है, वह धर्म या मत अधिक समय तक ठहर नहीं सकता।" यह एक कटु सत्य है, इसलिए कि कोई भी समाज या धर्म बिना घरों के या घरेलू जीवन के, उन्नत नहीं हो सकता और स्त्रियाँ ही गृह-निर्माण करती हैं। गृह-निर्माण-कला

में स्त्रियाँ सचमुच अपना सानी नहीं रखतीं। बौद्ध-धर्म के प्रचार में भी भारतीय स्त्रियों ने जिस लगन और जिस अद्भुत त्याग, बलिदान और सत्साहस का परिचय दिया है, उसके ज्वलन्त उदाहरण भारतीय इतिहास को छोड़ कर अन्यत्र ढूँढ़े भी न मिलेंगे।

बौद्ध-संघ में भिक्षु और भिक्षुणियों की सेवा-सुश्रूषा के लिये कुछ अन्य पुरुष और स्त्रियाँ रखी जाती थीं। उनका मुख्य कर्त्तव्य था कि जो लोग संसार छोड़ कर विरक्त हो चुके हैं, उनके रहन-सहन तथा खिलाने-पिलाने का यथोचित प्रबन्ध करें। प्रबन्ध आदि करने वाले लोग जन-सेवक कहलाते थे और उनमें अपना कर्त्तव्य पालन करने की यथेष्ट योग्यता भी होती थी। जन-सेवकों के लिए यह अनिवार्य नहीं था कि वे भिक्षु और भिक्षुणियों की तरह ब्रह्मचर्य और दारिद्रय व्रत का पालन करें।

बुद्धदेव के लिए स्त्रियाँ एक गौण वस्तु की तरह थीं। परन्तु इसका यह अर्थ हर्गिज नहीं है कि उन्होंने स्त्रियों को किसी प्रकार भी असम्मान की दृष्टि से देखा। उनके नियमोपनियम और धर्मोपदेश मुख्यतः भिक्षुओं के लिए बनाये गये थे। परन्तु उन्होंने स्त्रियों और उनकी मान-मर्यादा के विरुद्ध कभी एक शब्द तक नहीं कहा।

भगवान् बुद्धदेव के अनुयायियों में सम्राट अशोक अपनी जन-सेवा, सत्यवादिता, धर्मप्रियता आदि गुणों के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध थे। वे ईसा से पहले तीसरे शताब्दी में हुए। उन्होंने दया, शान्ति और नीति-धर्म के भावों से पूर्ण अपनी राजकीय घोषणाएँ बहुत सी मीनारों और स्तम्भों में खुदवा दीं। उन्होंने बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए कोई बात उठा न रखी। उन्होंने बहुत से ज़िलों में बौद्ध-प्रचारक भेजे और अपने राजकुमार महेन्द्र को एक विशेष प्रचारक-संघ का मुखिया बनाकर लंका को भेज दिया। महेन्द्र के उद्योग से लंका में एक संघ की स्थापना हुई। राज-परिवार की कुछ स्त्रियाँ भी भिक्षुणी बन गईं। सम्राट् अशोक की राजकुमारी संघमित्रा ने भी भिक्षुणी के वेष में लंका की यात्रा की और वहाँ बौद्ध-धर्म के पुनीत सिद्धान्तों का प्रचार किया। उसके साथ भारत से भिक्षुणियों का

एक दल भी गया था। वह अपने साथ उस बोधि-वृक्ष की एक शाखा भी ले गई, जिसके नीचे बुद्धदेव ने बुद्धत्त्व या निर्माण के उच्च तत्त्वों को हृदयंगम किया था। बोधि-वृक्ष की वह ऐतिहासिक शाखा अनुराधापुर में लगाई गई। वह एक हरे-भरे वृक्ष के रूप में परिणत होकर आज भी उपज रही है। कहते हैं कि अनुराधापुर (लंका) में लगा हुआ यह लगभग २२०० वर्ष का ऐतिहासिक वृक्ष संसार भर के वृक्षों से अधिक पुराना है।

पाटलिपुत्र (पटना) में अशोक ने बौद्धों की एक बड़ी सभा की, उसमें बौद्ध-धर्म के विधान तथा संघों के नियमोपनियमों का संशोधन किया गया, जिससे कि भिक्षु और भिक्षुणियाँ तथा गृहस्थ स्त्री-पुरुष दोनों ही समान भाव से धर्म के विरुद्ध तत्त्वों को हृदयंगम करके अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त कर सकें।

आमतौर पर बौद्ध लोग ईश्वर में विश्वास नहीं करते। परन्तु कहीं-कहीं बौद्ध समाज में ईश्वर और देवी या देवता की पूजा भी प्रचलित है। बौद्ध जगत् में 'अवलोकितेश्वर' नाम के देवता की पूजा प्रचलित है। यह देवता बौद्धों की रक्षा करता है और सब लोगों को दया-भाव से देखता है। इस देवता के साथ ही बौद्धों में एक देवी की पूजा भी की जाती है। वह देवी करुणा की देवी है। सब जीवों पर करुणा की वर्षा करना ही उसका काम है। मुख्यतया चीन और जापान में इसकी पूजा होती है।

बौद्ध ग्रन्थों में, बुद्ध की पाँच मानवीय पुरुष-शक्तियों के साथ ही, पाँच स्त्री-शक्तियों का भी उल्लेख पाया जाता है। लङ्का में इसी धर्म की एक देवी—'पट्टिनी'—का मन्दिर बना हुआ है। बौद्ध-धर्म के ह्रास के समय भी उसमें बहुत से देवी-देवताओं की पूजा का प्रचलन नहीं है। बौद्ध-समाज में प्रचलित देवी की पूजा ने प्राचीन काल से आज तक स्त्रियों की मनोवृत्ति पर, उनके चरित्र पर, बड़ा गहरा प्रभाव डाला है। इसी कारण बौद्ध स्त्रियों में दया और परोपकार के स्त्रियोचित गुणों की भावना की अभिवृद्धि हुई है। वर्मा में बौद्ध स्त्रियों के चरित्र में दया और परोपकार के गुण का विकसित रूप आज भी देखा

जाता है। वहाँ की स्त्रियाँ आज जिस प्रकार पूर्ण स्वतन्त्रता का उपयोग कर रही हैं, उससे उनके उक्त स्त्रियोचित गुणों का विकास ही हुआ है, ह्रास नहीं।

बौद्ध भिक्षुणियों में क्षेमा, उपाकता, विसाखा आदि के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। दया, ज्ञान, त्याग, परोपकार, लोक-सेवा आदि दुर्लभ मानवीय गुणों के कारण ये देवियाँ बौद्ध-धर्म के इतिहास में अमर हो चुकी हैं। विदेशी इतिहासज्ञों तक ने उनके निस्पृह त्याग और सेवाभाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। बौद्ध-धर्म के प्रचार और उसे दृढ़ता से संघबद्ध करने में इन देवियों ने अद्भुत क्रियाशीलता का परिचय दिया था।

बौद्ध स्त्रियों के प्रभाव की झलक उन भारतीय नाटकों में भी देखने को मिलती है, जिनमें बौद्ध भिक्षुणियाँ नाटक-पात्री के रूप में रङ्ग-मञ्च पर प्रकट होती हैं। उदाहरण के लिए भवभूति के प्रसिद्ध नाटक 'मालती-माधव' का उल्लेख करना अप्रासङ्गिक न होगा। उस नाटक की प्रधान पात्री मालती का विवाह उसके प्रेमी माधव के साथ बौद्ध धर्म के अनुसार एक भिक्षुणी कराती है। वह भिक्षुणी योग के सिद्धान्तों को अमल में ला चुकी थी और जादू की विद्या में भी पूर्णतया निपुण थी। उस भिक्षुणी ने वर-वधू के रूप में मालती-माधव को जिस भावपूर्ण शब्दों में आशीर्वाद दिया उनसे स्पष्टतया प्रकट है कि बौद्ध धर्म के अनुसार गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को समान अधिकार प्राप्त थे और बौद्ध समाज में स्त्री का पद पुरुषों की अपेक्षा किसी प्रकार भी हेय नहीं समझा जाता था।

तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रचार का श्रेय मुख्यतया दो राजकुमारियों को था। उन्होंने तिब्बत की राजधानी लासा में अनेक मन्दिर बनवाए और चीन तथा नैपाल से लाकर उनमें आश्चर्यजनक मूर्तियों की स्थापना की। उन अद्भुत मूर्त्तियों में बौद्ध युग की वास्तु विद्या के उन्नत और विकसित रूप की झलक आज भी देखी जा सकती है। ऊपर इस बात का भी उल्लेख किया जा चुका है कि लङ्का में बौद्ध-धर्म के विस्तार में किसी अंश तक स्त्रियों का भी हाथ था। इस प्रकार हम स्पष्ट देखते हैं कि व्यक्तिगत रूप से प्रभावशाली स्त्रियों ने बौद्ध-धर्म की स्थापना में हाथ बँटाया और उसे अधिकाधिक व्यापक

रूप देने में अद्भुत प्रभाव डाला और साधारण स्त्रियों ने अपने पुरुषों के साथ उस धर्म की दीक्षा लेकर उसे जीवित रक्खा।

आम तौर पर बौद्ध-धर्म की प्रवृत्ति स्त्रियों के मामले में किसी तरह का हस्तक्षेप न करने की ओर निरपेक्ष रही है। यहाँ हिन्दू धर्म की तरह मनु का सा ऐसा कोई न्याय-विधान या शास्त्र नहीं है, जो स्त्रियों के कार्यों या उनके ज्ञान को एक परिमित चहारदीवारी में बन्द कर दे और यहाँ (बौद्ध-धर्म में) ऐसी किसी रीति का प्रचलन नहीं है, जिसके अनुसार स्त्रियों को पुरुषों की अधीनता में रहना पड़े, जैसा कि पॉल के धर्म-पत्रों और ईसाई धर्माध्यक्षों की शिक्षाओं में कहा गया है। ईसाई पादरियों की इस शिक्षा का पता कि स्त्रियाँ पुरुषों की अधीनता में रहें, इङ्गलिश स्टेट-चर्च के अन्तर्गत हुए विवाहों, और कुछ रोमन कैथोलिक आदेशों से अच्छी तरह चल जाता है।

ऊपर हम देख चुके हैं कि बौद्ध-धर्म के प्रवर्त्तकों द्वारा भिक्षुणियों पर लगाये गये कुछ उचित और आवश्यक नियन्त्रणों को छोड़ कर, आमतौर पर, वहाँ स्त्रियों की आज़ादी के मार्ग में अन्य धर्मों की तरह कोई ख़ास रुकावट नहीं डाली गई, इस कारण शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से उनके विकास का मार्ग तनिक भी अवरुद्ध नहीं होने पाया। इसका सुफल प्रत्यक्ष रूप से उन देशों में आज भी देखने को मिलता है, जहाँ बौद्ध-धर्म का सितारा बुलन्द हो रहा है। इन देशों में से किसी में भी लड़के-लड़कियों की शादी इस तरह पक्की नहीं कर दी जाती, जैसे कि भारत में कर दी जाती है, और वहाँ स्त्री अबला के रूप में नहीं दिखाई देती। पर्दे की चहारदीवारी में बन्द स्त्रियों का तो वहाँ नाम भी नहीं है। उन देशों में पत्नियों, पुत्रियों, बहिनें और प्रेमिकाएँ पुरुषों से बिल्कुल आज़ादी से मिलती-जुलती हैं।

बर्मा में बौद्ध-धर्म आज भी अपने विशुद्ध रूप में चमकता हुआ दिखाई देता है। वहाँ स्त्री को प्राकृतिक रूप से अपने आपको समाज में उन्नत बनाने की पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त है और शायद दुनिया में कहीं भी स्त्री का पद इतना अनियन्त्रित नहीं है जितना कि उस देश में, और न उच्च कोटि की क्रियाशीलता

और चातुर्य किसी दूसरे देश की स्त्रियों ने ही प्राप्त किया है, जितना कि बर्मा की स्त्रियों ने।

बर्मा में विवाह धार्मिक कृत्यों में शामिल नहीं है, परन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि वहाँ विवाह-सम्बन्ध में कोई पवित्रता नहीं है। बर्मा में विवाह का अर्थ है, प्रेम, सद्भाव और साहचर्य के आधार पर समान भाव से साझेदारी। वहाँ पति और पत्नी विवाह करके वास्तविक अर्थों में एक दूसरे के जीवन-सहचर बनते हैं। स्त्री-पुरुष के बीच पारस्परिक प्रेम और सद्भाव का खात्मा होते ही उनके सारे सम्बन्धों पर पानी फिर जाता है। बर्मा में जो स्त्री-पुरुष अलग रहना चाहते हैं, उनको मिला कर रखने के लिए कोई धार्मिक बन्धन नहीं है और इसलिए वहाँ एक दूसरे को तलाक़ देने की पूरी आज़ादी है। परन्तु सम्बन्ध-विच्छेद का यह अधिकार वहाँ बहुत ही कम या कभी-कभी काम में लाया जाता है, इसलिए कि स्त्री-पुरुषों को हर समय इस बात का ज्ञान रहता है कि सम्बन्ध-विच्छेद की तलवार उनके सिर पर लटकती है। इसी कारण व्यवहार में वे एक दूसरे के प्रति अधिक उदार और सहनशील बन जाते हैं और चिरकाल तक उनके हृदयों में प्रेम की ज्वलन्त ज्योति जगमगाया करती है। विवाह में स्त्री अपनी सम्पत्ति और नाम का त्याग नहीं करती। वह अँगूठी नहीं पहनती। वह किसी धार्मिक, क़ानूनी, सामाजिक या नैतिक बन्धन में भी नहीं पड़ती। वहाँ पुरुष-स्त्री सम्बन्धी क़ानून में कोई भेद-भाव नहीं है। कहने का अभिप्राय यह है कि बर्मा में स्त्री जो कुछ चाहती है, वह करती है और जैसा अपने जीवन को बनाना चाहती वैसा बना लेती है। यही कारण है कि जीवन के अधिकांश क्षेत्रों में स्त्री पुरुष के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर समान अधिकार से काम करती हुई दिखाई देती है। बर्मा का लगभग आधा व्यापार स्त्रियों के हाथों से होता है और वे उसमें पूर्ण योग्यता दिखाती हैं। असल बात यह है कि बर्मा में स्त्रियों की व्यापारिक प्रवृत्ति और पुरुषों की सूझ-बूझ की अपेक्षा कहीं अधिक पैनी और चमकती हुई है।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म में स्त्रियों के विकास का मार्ग चारों ओर से पूर्णतया उन्मुक्त है। बौद्धों के केन्द्र बर्मा में प्राचीन काल से

आज तक स्त्री को धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में स्वेच्छानुसार आगे बढ़ने और अपनी अभिरुचि के अनुसार पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिला कर काम करने का यथोचित अवसर मिलता रहा है। इसी कारण बर्मा में बौद्ध स्त्रियाँ संसार की स्त्रियों में अधिक से अधिक प्रगतिशील विचारों की ओर अग्रसर होती रही हैं। वहाँ आज भी स्त्री अबला नहीं, किन्तु स्वतन्त्रता, समता, न्याय, प्रेम और बन्धुत्व के समान मानवीय अधिकारों का पूर्ण उपयोग करने-वाली शक्ति-सम्पन्न दुर्गा है।

१०—भारतीय स्त्रियों की वीरता

वीरता, मानवीयता का एक प्रधान गुण है, संसार की सभी जीवित जातियाँ इस गुण की क़दर करती हैं। वीरों की सब जगह पूजा होती है। संसार की वीर जातियों के इतिहास में आर्य जाति की वीरता प्रसिद्ध है। आरम्भ ही से आर्य लोगों में वीरता का अनुपम गुण चला आया है। अन्य लोकोपयोगी कामों के साथ ही, आवश्यकता पड़ने पर, आततायियों से युद्ध करना, उनका संहार करके आत्म-रक्षा करना, हिन्दू धर्म-शास्त्र में पुनीत कर्तव्य माना गया है। इसी कारण कुरुक्षेत्र के संग्राम में, मोहवश अकर्मण्यता का भाव जगने पर, भगवान् कृष्ण को अर्जुन से कहना पड़ा था—

> **हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।**
> **तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चयः।**

कर्तव्य-पालन के लिए रण-भूमि में प्राण त्याग करने से स्वर्ग मिलता है—यह भाव शताब्दियों तक हिन्दू-जाति का जीवन मन्त्र रहा है। जिन लोगों की धमनियों में गरम ख़ून था, जिनकी नसों में जातीय जीवन की ज्योति जगमगा रही थी, वे योद्धा धर्म के लिए, जातीय मान-रक्षा के लिए हँसते-हँसते मर मिटते थे, अथवा मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र की तरह युद्ध के अन्त

में देश भर में विजय-दुन्दुभी बजा देते थे। क्यों ? दुष्टों का संहार करके स्वधर्म और स्वत्त्वों की रक्षा के लिए। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिन्दू-जाति की वीरता की यह भावना विश्व के रङ्ग-मञ्च पर कैसे अनूठे खेल दिखा चुकी है।

वीरता का दुर्लभ गुण, पुरुषों के समान ही हिन्दू रमणियों में भी पाया जाता था। भारतीय इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण ज्वलन्त नक्षत्र की भाँति चमकते हुए दिखाई पड़ते हैं, जिनमें इस देश की स्त्रियों ने समर में खुल कर अपने दुश्मनों से लोहा लिया और उनके दाँत खट्टे किए। सचमुच भारतीय देवियाँ समय-समय पर वीर-रमणी और वीर-प्रसूता के पवित्र नाम को सार्थक करती रही हैं। वीरबाला, दुर्गावती, पद्मावती और 'भारतीय नारीत्व की अन्तिम ज्योति' रणचण्डी लक्ष्मीबाई को कौन भूल सकता है! आज इस लेख में हम एक ऐसी ही वीराङ्गना के पुण्य चरित्र की चर्चा करने बैठे हैं, जिसके पद-पद्मों की चरण-रज से इस देश का दिव्य धरा-धाम पवित्र हो चुका है।

बसन्तबाला

जैसलमेर के एक राजा की लड़की का नाम था बसन्तबाला। रूप-गुण दोनों ही में वह अनुपम थी। आरम्भ ही से उसकी प्रतिभा चमकने लगी थी। बचपन में सोते समय रात को सेविकाएँ उसे राजपूत वीरों की कहानियाँ सुनाया करती थीं। कहानियाँ सुन कर, बसन्तबाला की प्रवृत्ति वीरतापूर्ण बन गई। वह बड़ी धर्मात्मा, सुशील और बुद्धिमती थी। उसका स्वभाव हठी था। खतरे के वक्त पीछे हटना या डरना तो वह जानती ही न थी। उसके चरित्र पर उसकी पूजनीया माँ के अनुपम गुणों की अटल छाप थी। माँ इस बात का सदा ध्यान रखती थी कि कोई बात पुत्री की इच्छा के प्रतिकूल न हो। पुत्री भी माँ की आज्ञा का पालन करना अपना परम पवित्र कर्त्तव्य समझती थी।

देश में सम्राट अकबर के शासन की धूम थी। उसकी कूटनीति राजपूतों के दिल और दिमाग़ पर असर कर चुकी थी। राजनैतिक दृष्टि से सचमुच

अकबर एक सफल सम्राट था, किन्तु नैतिक दृष्टि से देखने पर, आज भी हमें उसके दिवालिया होने में तनिक भी सन्देह नहीं है। दिल्ली में नौरोज़ के दिनों में मीना बाज़ार लगवाना अकबर के दिमाग़ की उपज थी। इस विलक्षण सूझ को उसने अपनी विलासिता का साधन बना रक्खा था। कहते हैं कि भद्र पुरुषों को विवश होकर अपनी स्त्रियों को मीना बाज़ार में भेजना पड़ता था। भले-भले घरों की रानियों और बेगमों को वहाँ जाने के लिए फुसलाया जाता था। उन्हें तरह-तरह के प्रलोभन दिए जाते थे। राजपूतों की—खासकर उन राजाओं की रानियाँ वहाँ जाने के लिए तैयार की जाती थीं, जो अकबर के अधीन हो चुके थे।

जब नौरोज़ और मीना बाज़ार की चर्चा बसन्तबाला के कान में पड़ती, तब उसका खून उबल उठता था। राजपूतों के पतन पर उसे बड़ा रोष होता था। एक दिन अपनी एक सहेली के सामने उसने प्रतिज्ञा करते हुए बड़े गर्व से कहा—आजकल राजपूत पतित हो गए हैं। मैं ऐसे राजपूत से अपना विवाह करूँगी, जो अपनी पत्नी की मान-मर्यादा सम्राट अकबर की आज्ञा से कहीं बढ़ कर समझे।

जोधपुर का राजा अभयसिंह बड़ा वीर था। बसन्तबाला की प्रतिज्ञा की चर्चा उसके कान में पहुँची। उसने ऐसी निर्भीक युवती के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की। बसन्तबाला ने ब्याह की दो शर्तें लिख भेजीं। पहली शर्त यह कि अभयसिंह उसे मीना बाज़ार में नहीं भेजे, और दूसरी यह कि, कलाजी नाम के एक बहादुर और बुद्धिमान राजपूत को जोधपुर में रहने की इजाज़त दे दे। दोनों शर्तें स्वीकार कर लेने पर अभयसिंह का ब्याह बसन्तबाला के साथ हो गया।

कलाजी बड़ा वीर और रण-कुशल योद्धा था। अभयसिंह ने उसे बड़े आदर के साथ जोधपुर में रक्खा। थोड़े ही दिनों में दोनों में बड़ी गहरी मित्रता हो गई। विवाह के बाद चार महीने भी सुख से न बीतने पाए थे कि अभयसिंह दिल्ली बुलाया गया।

अभयसिंह कलाजी को साथ लेकर दिल्ली आ गया। इधर अकबर को यह पता चल हो गया था कि अभयसिंह का विवाह भाटिया जाति की एक बहुत ही सुन्दर स्त्री से हुआ है, और उसे यह जान-बूझ कर यहाँ नहीं लाया। उसने अभयसिंह से कहा कि जब शाही बेगमें मीना बाज़ार में जाती हैं, तब तुम्हें अपनी स्त्री को वहाँ भेजने में क्या एतराज़ है, तुम अपनी रानी को बुलवा लो।

अभयसिंह ने जोधपुर की गद्दी बड़े छल से प्राप्त की थी। अकबर की बात सुन कर वह डर गया और अपनी रानी को बुलाने के लिए पत्र लिख दिया। इस सम्बन्ध में उसने कलाजी से कोई राय नहीं ली। बसन्तबाला राजा का पत्र पाकर आग-बबूला हो गई। पति-परायणा वीराङ्गना था। उसे आशङ्का थी कि यदि अकबर के इच्छानुसार वह दिल्ली न पहुँची, तो उसका पति और कलाजी गिरफ्तार कर लिए जायँगे।

संयोग से रानी बसन्तबाला दिल्ली में उस वक्त पहुँची, जब कि नौरोज़ का मेला समाप्त होने को था। बीसियों रानियाँ मेले में जाती थीं, किन्तु अभयसिंह की रानी नहीं। इससे अकबर बहुत कुढ़ गया था। अभयसिंह की अनुपस्थिति में बदला लेने के अभिप्राय से उसने रानी बसन्तबाला को उसके शाही महल के फाटक पर पहुँचने पर कालू खाँ नाम के कच्छी नवाब के महल में भिजवा दिया। द्वार पर शाही पहरा बिठा दिया गया। कालू खाँ यह जान कर बड़ा खुश हुआ कि जोधपुर की रानी उसे इनाम में मिली है।

रानी को इस षड्यन्त्र का तनिक भी पता नहीं था। वह बड़ी बुद्धिमान थी। उसने उद्योग करके सारा हाल जान लिया और अपनी एक दासी से कहा कि कलाजी को मेरे आने की खबर दे दे। दासी बड़ी विश्वस्त और स्वामि-भक्त थी। घूँघट काढ़े हुए वह बाहर चली आई। द्वार पर सिपाहियों के पूछ-ताछ करने पर उसने कह दिया कि मैं रानी के लिए बाहर से कुछ सामान लेने जाती हूँ।

पता लगा कर बाँदी कलाजी के मकान पर पहुँची। रानी के क़ैद होने की खबर पाकर कलाजी को बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा कि यदि दिल्ली आने से पहले मुझे यह खबर मिल जाती तो आज यह आफ़त सिर पर न

आती। बाँदी ने रानी का समाचार उसी के शब्दों में कलाजी के आगे रख दिया—"जो होना था वह हो चुका। बीती हुई बात पर शोक करना व्यर्थ है। यदि तुम सचमुच मेरे भाई हो, और तुम्हें अपनी बहिन की मान-मर्यादा का ज़रा भी ध्यान है, तो मुझे इस सङ्कट से बचा लो, अन्यथा मैं नवाब को मार कर स्वयं भी मर मिटूँगी।"

'बहिन' का नाम सुनते ही कलाजी का जी भर आया। उसने बाँदी के कपड़े स्वयं पहन लिए और उसे अपने मर्दाने कपड़े पहना दिए और कह दिया कि तू यहाँ रानी की प्रतीक्षा कर, रानी यही कपड़े पहन कर तेरे पास चली आवेगी।

बाँदी के वेष में कलाजी नवाब के महल में जा पहुँचा। सिपाहियों ने उसे नहीं रोका। रानी के पास जाकर उसने कहा—बहिन यह कपड़े पहन कर तू यहाँ से निकल जा। मेरे मकान पर तुझे बाँदी मिलेगी। वहाँ घोड़े कसे हुए तैयार हैं। मैं भी जल्द ही आ जाऊँगा।

रानी बड़ी बुद्धिमती थी। उसने कपड़े बदल कर अपने हाथ-पाँव और मुँह पर रंग लगा लिया। फाटक पर सिपाही के पूछने पर कह दिया कि मैं पान लेने जा रही हूँ। आगे बढ़ने पर दासी मिल गई। उसने रानी को कला जी के मकान पर पहुँचा दिया। नवाब के महल में कलाजी ने एक दूसरी बाँदी के कपड़े पहन लिए और उसे समझा दिया कि जब कालू खाँ आवे, तब उसे शराब पिला कर उसके पेट में कटार भोंक देना, और सबेरा होने पर कह देना कि नवाब को मार कर रानी भाग गई।

बाँदी को समझा-बुझा कर ज़नाने भेष में कलाजी बाहर आया। सिपाही ने पूछा—"अब तू कहाँ चली?" उसने उत्तर दिया—"मैं शराब लेने जाती हूँ।" सिपाही चुप हो गया और कलाजी खुशी-खुशी अपने मकान पर चला आया। वहाँ बसन्तबाला और एक दासी मर्दानी पोशाक में तैयार बैठी थीं। कलाजी ने अपने कपड़े पहन लिए और उसी समय तीनों प्राणी घोड़ों पर सवार होकर सूबियाना के क़िले में जा पहुँचे। सूबियाना का क़िला उन दिनों

बहुत सुदृढ़ था। शत्रुओं को उस पर चढ़ाई करने का साहस तक न होता था।

कलाजी को आशङ्का थी कि अकबर पीछा करेगा। इसलिए उसने लड़ाई के लिए राजपूतों का जत्था बनाया। लड़ाई का सब सामान तैयार किया गया। अकबर की बेईमानी और दग़ाबाज़ी की बात सुनकर राजपूतों को बड़ा क्रोध आया। वे बसन्तबाला की रक्षा के लिए सर हथेली पर लेकर तैयार हो गए।

बसन्तबाला अपनी मान-मर्यादा के लिए प्राणों की बाज़ी लगाकर मारवाड़ चली आई। उधर कालू ख़ाँ अपने महल में आया। दासी ने उसे बेहद शराब पिला दी। उसी दशा में उसने उसके पेट में तेज़ कटार भोंक कर उसका काम तमाम कर दिया। अपने प्रिय सरदार कालू ख़ाँ के मारे जाने की खबर सुन कर अकबर आपे से बाहर हो गया। कलाजी का मकान घेर लिया गया। अन्य राजपूत सरदारों की भी तलाशी ली गई, परन्तु रानी बसन्तबाला का पता न चला। बादशाह के दिमाग़ का पारा बेहद चढ़ गया। इस अवसर पर अनेक राजपूतों से बादशाह की अनबन हो गई और वे शाही सेना से लड़ कर मारे गए। अन्त में अकबर ने बाइस हज़ार आदमियों की सेना को मारवाड़ पर चढ़ाई करने का हुक्म दिया। शाही पलटन ने मारवाड़ में आकर बड़ी लूट-मार मचाई।

जिस क़िले में बसन्तबाला रहती थी, उस पर धावा किया गया। रानी स्वयं बड़ी वीर और बहादुर थी। वह जिरह-बख्तर पहन कर शाही सेना के मुक़ाबिले मैदान में यह कहते हुए निकल पड़ी—

सिर काटे सिर जात है, सिर काटे सिर होय।
जैसे बाती दीप की, कटि उजियारी होय॥
रण में जूझे शूरमा, सन्मुख खावे तीर।
भर-भर मारे शत्रु को, साले सकल शरीर॥

बसन्तबाला रण-भूमि में आते ही तीर-कमान स शाही सैनिकों के कलेजे बेधने लगी। तीखे तीर लगते ही सिपाही ज़मीन पर लोटने लगे। बात की बात में वीराङ्गना ने अकबर के बीसियों सिपाही धराशायी कर दिये। क़िले में राजपूत बहुत थोड़े थे। परन्तु वे ऐसी वीरता से लड़े कि अधिक समय तक युद्ध में शाही सेना के पैर जमे न रह सके। बहुत से सिपाही मैदान छोड़ कर भाग गये। उस समर की विजय-माल वीर क्षत्राणी बसन्तबाला के गले में पड़ी। हारे हुए सैनिकों को बादशाह ने दिल्ली बुला लिया और क़सम खा ली कि जब तक सूबियाना का क़िला फ़तह न हो तब तक सुख की नींद सोना हराम है।

कुछ ही दिन बाद अकबर ने दिल्ली से बहुत बड़ी फ़ौज सोयान (सूबियाना) भेज दी। शाही फ़ौज ने चारों ओर से क़िला घेर लिया राजपूतों ने तीन दिन तक घमासान लड़ाई लड़ी और अन्त में शाही सेना व तितर-बितर कर दिया। अकबर स्वयं लड़ाई में आया। जब उसने देखा कि राजपूत लड़ाई में अपना सानी नहीं रखते, और यह क़िला सहज ही में फ़त नहीं किया जा सकता, तब वह बहुत परेशान हुआ और खाना-पीना छोड़ क बैठ गया। उसने प्रण कर लिया कि जब तक सोयाना का क़िला फ़तह होगा, तब तक खाना नहीं खाऊँगा। शाही सेना के सैकड़ों आदमी मर चु थे, और वह बिलकुल तितर-बितर हो चुकी थी। इस दशा में सरदारों बादशाह की प्रतिज्ञा रखने के लिए मिट्टी का एक छोटा-सा नक़ली क़ि बनवा लिया और उसका नाम सोयाना रख लिया। दूसरे दिन सोयाना क नक़ली क़िला तोड़ने की तैयारी की गई। राजपूतों और बसन्तबाला के कानों में भी यह खबर पहुँच गई। उन्हें अपनी वीरता पर गर्व था। रात ही में अपने सोयाना दुर्ग के गौरव की रक्षा के लिए एक हज़ार योद्धा वहाँ इकट्ठ हो गये। शाही सेना ने मिट्टी के क़िले पर धावा किया, और राजपूतों उसका मुँह तोड़ उत्तर दिया। दोनों ओर से मिट्टी के क़िले पर खुल कर लड़ा हुई। राजपूतों की मार से शाही सेना के छक्के छूट गये। बादशाही फ़ौज मे मारवाड़ के जो राजा शामिल थे, वे भी सोयाना के सम्मान का विचार कर

बिगड़ खड़े हुए। अकबर ने बहुत हाथ-पैर पीटे, पर सोयाना का मिट्टी का नक़ली क़िला भी फ़तह नहीं हो सका। अन्त में हार कर उसे बसन्तबाला के दुर्दमनीय साहस और अपूर्व रण-कौशल की प्रशंसा करनी पड़ी। एक राजपूत स्त्री से हार मानने में उसे शर्म लगती थी, इसलिए उसने जोधपुर के राजा को सन्धि के लिए बुलाया। बसन्तबाला और कलाजी ने अकबर की किसी शर्त को नहीं माना। जिस समय अभयसिंह अकबर का भेजा हुआ सन्धि का पैग़ाम लेकर बसन्तबाला के पास पहुँचा, उस समय उस वीर क्षत्राणी ने कहा—

"यह सर ईश्वर अथवा आपके सिवा किसी और के सामने झुकने वाला नहीं है। शरीर क्षणभंगुर है, इसका कोई ठिकाना नहीं, मुझे मरने-जीने की तनिक भी परवाह नहीं है, पर अकबर ऐसे दुष्ट बादशाह की अधीनता स्वीकार नहीं करूँगी। मैंने जो विजय प्राप्त की है, उसे सन्धि की शर्तों से बर्बाद नहीं करूँगी। सन्धि की बातें सुनने के लिए भी मेरे कान तैयार नहीं हैं। इस रण-यज्ञ में प्राणाहुति देकर मैं क्षत्राणी के पवित्र नाम को सार्थक करूँगी।"

इतना कह कर रानी ने हाथ जोड़ कर अभयसिंह को प्रणाम किया और उसे अपने सामने से चले जाने का इशारा किया। उसके रक्त-वर्ण नेत्रों से आग की चिनगारियाँ निकल रही थीं। अभयसिंह के चले जाने पर बसन्तबाला ने कलाजी को बुला कर उससे कहा—

"राजपूत अपने धर्म से पतित हो गए हैं। कमीने बादशाह ने एक स्त्री पर चढ़ाई करके अपने मुँह पर व्यर्थ के लिए कलङ्क-कालिमा लगा ली है, और अब, जयपुर और जोधपुर के राजे सन्धि कराने आए हैं! तुम वीर राजपूतों को मेरा सन्देश भेज दो कि तुरन्त ही आकर समर-भूमि में अकबर को उसकी काली करतूतों का मज़ा चखा दें। अब सन्धि नहीं, संग्राम होगा। तुम भी केसरिया बाना धारण करके रणक्षेत्र में अक्षय कीर्त्ति प्राप्त करो।"

बसन्तबाला का रण-निमन्त्रण पाकर वीरता के नाम पर मिटने वाले राजपूत बात की बात में इकट्ठे हो गए। सबके शरीर पर केसरिया पोशाक सुशोभित हो रही थी। रानी ने अपने हाथ से अपने मुख्य-मुख्य सरदारों को पान का बीड़ा दिया। रण में जाते समय योद्धाओं को पान देना, बड़ा सम्मानसूचक समझा जाता था।

अरुणोदय हो रहा था। सूबियाना (मारवाड़) दुर्ग के आस-पास केसरिया वस्त्र धारण किए राजपूतों का दल सागर की भाँति उमड़ रहा था। रण-भेरी बज उठी। देखते-देखते कई सहस्त्र राजपूत शाही फ़ौज पर भूखे सिंहों के समान दौड़ पड़े। रानी स्वयं अपना तीर-कमान लेकर रण में जूझने के लिए आ गई। कई घण्टे तक दोनों सेनाओं में तुमुल युद्ध होता रहा। अन्त में शाही सेना के पैर उखड़ गए। अकबर रानी के तीर से घायल हुआ। वह रण छोड़ कर भागना ही चाहता था कि बसन्तबाला ने ललकार कहा—"दुष्ट मैदान छोड़ कर भागने में शर्म नहीं आती! संख्या में हम थोड़े हैं, किन्तु अपनी आन पर जान देकर दिखा देना चाहते हैं कि राजपूतनी का अपमान करना टेढ़ी खीर है, सिंहनी को छेड़ने के लिए गज भर का कलेजा चाहिए।"

इस घमासान् युद्ध का परिणाम भी वही हुआ, जो प्राय: ऐसी लड़ाइयों का हुआ करता है। राजपूत शाही सेना के मुक़ाबले बहुत थोड़े थे, किन्तु लड़े बड़ी बहादुरी से। उन्होंने अपनी तलवारों से शाही सिपाहियों को गाजर-मूली की तरह काट कर पृथ्वी पाट दी और स्वयं भी रणक्षेत्र में वीर-गति प्राप्त की! वीर-गति को प्राप्त हुए लोगों में रानी बसन्तबाला और कलाजी का भी शव पड़ा हुआ था!

इस प्रकार की वीरता और दुर्दमनीय साहस राजपूतों की भाटी जाति के लिए बिलकुल स्वाभाविक था। इस जाति की प्राचीन स्त्रियों के अद्भुत शौर्य और आत्मत्याग के गीत आज भी राजपूताने में घर-घर गाए जाते हैं। बसन्तबाला ऐसी अगणित देवियाँ इस देश के इतिहास में अपनी उज्ज्वल कृतियों

अमर हो चुकी हैं। वे जीवन और मृत्यु के वास्तविक रहस्य को समझती
। इसी कारण अपनी मान-मर्यादा के लिए शत्रुओं के दाँत खट्टे करके
सते-हँसते समर में सो जाती थीं। उनकी सन्तति भी वीर और कर्तव्य-परायण
ती थी। देश के दुर्भाग्य से, वीरता की वह अनूठी भावना, जो सहस्रों
वियों के रोम-रोम में व्याप्त थी, और जिसने शताब्दियों तक यहाँ की सन्तति
को सम्मान के साथ ऊँचा सर उठा कर दुनिया में जीवित रक्खा, धीरे-धीरे
बिलकुल लोप हो गई। आज तो उन सब बातों की एक धुधली सी स्मृति शेष
रह गई है। अतीत की उसी धुधली स्मृति की प्रकाश-रेखा के सहारे आज
प्राय हिन्दू जाति अपने आत्मोद्धार का मार्ग ढूँढ़ रही है। अन्त में परिणाम
। होगा, यह तो आने वाला समय बतावेगा।

———